महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा
(संसद द्वारा पारित अधिनियम 1997, क्रमांक 3 के अंतर्गत स्थापित केंद्रीय विश्वविद्यालय)
Mahatma Gandhi Antarrashtriya Hindi Vishwavidyalaya, Wardha
(A Central University Established by Parliament by Act No.3 of 1997)

एमएसडब्ल्यू पाठ्यक्रम (80 क्रेडिट)
चतुथ सेमेस्टर

दूर शिक्षा निदेशालय
महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा
पोस्ट - हिंदी विश्वविद्यालय, गांधी हिल्स, वर्धा - 442001 (महाराष्ट्र)

मार्ग निर्देशन समिति

प्रो. गिरीश्वर मिश्र
कुलपति, म.गां.अं.हिं.वि., वर्धा

प्रो. आनंद वर्धन शर्मा
प्रतिकुलपति, म.गां.अं.हिं.वि., वर्धा

प्रो. अरबिंद कुमार झा
निदेशक, दूर शिक्षा निदेशालय, म.गां.अं.हिं.वि., वर्धा

पाठ्यचर्या निर्माण समिति

प्रो. मनोज कुमार
निदेशक – म.गां.फ्यू. गु. समाज कार्य अध्ययन केंद्र, म.गां.अं.हिं.वि., वर्धा

डॉ. मिथिलेश कुमार
असिस्टेंट प्रोफेसर , म.गां.फ्यू. गु. समाज कार्य अध्ययन केंद्र, म.गां.अं.हिं.वि., वर्धा

डॉ. शिवसिंह बघेल
असिस्टेंट प्रोफेसर , म.गां.फ्यू. गु. समाज कार्य अध्ययन केंद्र, म.गां.अं.हिं.वि., वर्धा

श्री अमोद गुर्जर
असिस्टेंट प्रोफेसर , म.गां.फ्यू. गु. समाज कार्य अध्ययन केंद्र, म.गां.अं.हिं.वि., वर्धा

डॉ. शंभू जोशी
असिस्टेंट प्रोफेसर एवं पाठ्यक्रम संयोजक, दूर शिक्षा निदेशालय, म.गां.अं.हिं.वि., वर्धा

संपादन मंडल

प्रो. मनोज कुमार
निदेशक – म.गां.फ्यू. गु. समाज कार्य अध्ययन केंद्र, म.गां.अं.हिं.वि., वर्धा

डॉ. मिथिलेश कुमार
असिस्टेंट प्रोफेसर , म.गां.फ्यू. गु. समाज कार्य अध्ययन केंद्र, म.गां.अं.हिं.वि., वर्धा

डॉ. शंभू जोशी
असिस्टेंट प्रोफेसर एवं पाठ्यक्रम संयोजक, दूर शिक्षा निदेशालय, म.गां.अं.हिं.वि., वर्धा

इकाई लेखन

खंड -1	खंड -2	खंड -3	खंड -4
डॉ.शंभू जोशी	डॉ.शंभू जोशी	डॉ.मिथिलेश कुमार	डॉ.मिथिलेश कुमार

कार्यालयीन एवं मुद्रण सहयोग

श्री विनोद वैद्य
सहायक कुलसचिव, दू.शि. निदेशालय

श्री महेन्द्र प्रसाद
सहायक संपादक , दू.शि. निदेशालय

डॉ. मेघा आचार्य
प्रूफ रीडर, दू.शि. निदेशालय

सुश्री राधा
टंकक, दू.शि. निदेशालय

अनुक्रम

क्र.सं.	खंड का नाम	पृष्ठ संख्या
1	**खंड - 1 भारतीय संविधान**	5
	इकाई - 1 भारतीय संविधान का इतिहास	6-10
	इकाई - 2 भारतीय संविधान का परिचय	11-17
	इकाई - 3 भारतीय संविधान की विशेषताएं	18-23
2	**खंड - 2 – भारतीय संविधान की अन्तर्वस्तु**	24
	इकाई - 1 मूल अधिकार एवं कर्तव्य	25-33
	इकाई - 2 राज्य के नीति निर्देशक तत्व	34-40
	इकाई - 3 संविधान संशोधन की प्रक्रिया	41-46
	इकाई - 4 संविधान संबंधी समसामयिक विमर्श	47-55
3	**खंड - 3 – मानवाधिकार : दार्शनिक परिप्रेक्ष्य**	56
	इकाई - 1 मानवाधिकार : परिचय	57-61
	इकाई - 2 मानवाधिकार का दर्शन	62-65
	इकाई - 3 मानवाधिकार विकास के चरण	66-71
	इकाई - 4 मानवाधिकार के सिद्धांत	72-76
4	**खंड - 4 – अंतरराष्ट्रीय एवं राष्ट्रीय परिदृश्य**	77
	इकाई - 1 मानवाधिकार का सार्वभौमिक घोषणा पत्र	78-85
	इकाई - 2 विभिन्न अंतरराष्ट्रीय संविदाएं	86-100
	इकाई - 3 मानवाधिकार संबंधी अंतरराष्ट्रीय संस्थाएं	101-106
	इकाई - 4 मानवाधिकार संबंधी राष्ट्रीय संस्थाएं	107-113

ज्ञान शांति मैत्री

MSW 16 संविधान और मानवाधिकार
खंड परिचय

प्रिय विद्यार्थियों,

एमएसडब्ल्यू पाठ्यक्रम (चतुर्थ सत्र) के प्रश्नपत्र **MSW 16 संविधान और मानवाधिकार** में आपका स्वागत है। इस प्रश्नपत्र को चार खंडों में विभाजित किया गया है।

पहले खंड में यह बताया गया है भारतीय संविधान के पहले कौनसे ऐसे महत्वपूर्ण कानून थे जिनसे भारतीय प्रशासन चलाया गया। तत्पश्चात भारतीय संविधान का परिचय दिया गया है। साथ ही भारतीय संविधान की विशेषताओं का भी उल्लेख किया गया है।

दूसरा खंड भारतीय संविधान की अन्तर्वस्तु को रेखांकित करता है। इसमें मूल अधिकार एवं कर्तव्यों, राज्य के नीति निर्देशक तत्वों और संविधान संशोधन प्रक्रिया का उल्लेख किया गया है। साथ संविधान से जुड़ी समकालीन बहसों को रेखांकित किया गया है।

तीसरा खंड मानवाधिकार की अवधारणा को प्रस्तुत करता है। इसमें मानवाधिकार की अवधारणा को समझाते हुए इसके दर्शन और विकास के चरणों की चर्चा की गई है। तत्पश्चात इससे संबंधित महत्वपूर्ण सिद्धांतों का भी उल्लेख किया गया है।

चौथे खंड में मानवाधिकार के राष्ट्रीय और अंतरराष्ट्रीय परिदृश्य को प्रकट किया गया है। इसमें मानवाधिकार के सार्वभौम घोषणा पत्र, विभिन्न अंतरराष्ट्रीय संविदाओं का उल्लेख करते हुए अंतरराष्ट्रीय एवं राष्ट्रीय स्तर पर मानवाधिकार के क्षेत्र में कार्यरत संस्थाओं का उल्लेख किया गया है।

खंड - 1

भारतीय संविधान

इकाई 1 भारतीय संविधान का इतिहास

इकाई की रूपरेखा

1.0 उद्देश्य

1.1 प्रस्तावना

1.2 भारतीय संविधान के इतिहास के चरण

1.3 सारांश

1.4 बोध प्रश्न

1.5 संदर्भ एवं उपयोगी ग्रंथ

1.0 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के पश्चात आप -

- भारतीय संविधान के इतिहास के विभिन्न चरणों से परिचित हो सकेंगे

1.1 प्रस्तावना

संविधान किसी भी देश की राजनीतिक व्यवस्था को बुनियादी आधार प्रदान करता है। इसी के आधार पर जनता शासित होती है। यह सरकार एवं जनता के बीच संबंधों को परिभाषित करते हुए उनके कार्य क्षेत्रों एवं दायित्वों को भी परिभाषित एवं व्याख्यायित करता है। संविधान वस्तुत: ऐसी विधि (कानून) है जो राज्य व्यवस्था के संचालन सिद्धांतों को स्पष्टता और वैधता प्रदान करता है।

हर संविधान में उसके नागरिकों के तथा संविधान निर्माताओं के आदर्शों की छाप दिखलाई देती है। भारतीय संविधान 26 जनवरी 1950 से लागू हुआ परंतु इसका इतिहास काफी विस्तृत है। इस इकाई में इसी इतिहास की चर्चा की गई है।

ज्ञान शांति मैत्री

1.2 भारतीय संविधान के इतिहास के चरण

भारतीय परिदृश्य में लोकतांत्रिक प्रणाली के उल्लेख काफी प्राचीन समय से मौजूद रहे हैं। एक राजनीतिक प्रणाली के रूप में लोकतंत्र यहां स्वीकृत रहा है। लेकिन जिन संदर्भों में वर्तमान में संविधान की चर्चा की जाती है उसका इतिहास अंग्रेजी राज की स्थापना के साथ जुड़ा हुआ है। अब हम इन्हीं चरणों की चर्चा करेंगे –

- रेग्युलेटिंग एक्ट, 1773

  यह भारत में ईस्ट इंडिया कंपनी के शासन की पहली लिखित विधि थी। इसके जरिए पहली बार ब्रिटिश संसद का हस्तक्षेप कंपनी के कार्यों में शुरू हुआ। इस एक्ट में वारेन हेस्टिंग्स को बंगाल का गर्वनर नियुक्त किया गया। बंगाल में उच्चतम न्यायालय की स्थापना की गई और दीवानी, फौजदारी,सेना एवं धार्मिक मामलों में व्यापक अधिकार प्रदान दिए गए।

- पिट्स इंडिया अधिनियम, 1784

इस अधिनियम का उद्देश्य भारत में ईस्ट इंडिया कंपनी की खराब होती साख को बचाना था तथा उस पर संसद का अधिक नियंत्रण स्थापित करना था । इसके लिए गवर्नर जनरल की परिषद की संख्या में बदलाव किया गया। पहली बार कंपनी के अधीन क्षेत्रों को 'ब्रिटिश अधिकृत प्रदेश' कहा गया।

- चार्टर एक्ट, 1833
  यह एक्ट अंग्रेजी राज के दौरान पहली स्पष्ट एवं विशद विधि कहा जा सकता है। इस दौरान कंपनी के अधीन कई नए क्षेत्र जुड़े। इन सभी अधीन प्रदेशों पर नियंत्रण स्थायी करने के लिए यह एक्ट पारित किया गया। इस एक्ट के माध्यम से बंगाल के गवर्नर को पूरे भारत का गवर्नर जनरल घोषित किया गया एवं उसे व्यापक अधिकार प्रदान किए गए। इसी के साथ गवर्नर जनरल ऑफ इंडिया कौंसिल को भी व्यापक अधिकार प्रदान किए गए और इसे भारत के क्षेत्रों के लिए कानून बनाने की शक्तियां प्रदान की गई।

- चार्टर एक्ट,1853
  यह एक्ट अंतिम चार्टर एक्ट था। इस अधिनियम के माध्यम से भारतीय नियंत्रण प्रणाली को नया स्वरूप प्रदान किया गया। गवर्नर जनरल परिषद को बनाए रखा गया परंतु इसमें काफी परिवर्तन किए गए। इसके जरिए एक तरह से कंपनी के शासन की समाप्ति की गई।

- 1858 का एक्ट
  1857 के प्रथम स्वतंत्रता संग्राम, जिसे अंग्रेज गदर/विद्रोह की संज्ञा देते थे, की पृष्ठभूमि में यह एक्ट लाया गया। इसका उद्देश्य भारत में उत्तम प्रशासन प्रदान एवं स्थापित करना था। इस एक्ट के माध्यम से कंपनी के अधीन समस्त क्षेत्र ब्रिटिश शासन के अंतर्गत आ गए। इसमें भारत का शासन ब्रिटिश साम्राज्ञी के ओर से राज्य सचिव द्वारा चलाया जाना निश्चित किया गया और इस सचिव की मदद के लिए 15 सदस्यीय भारत परिषद बनाई गई। भारत के गवर्नर जनरल का नाम 'वायसराय' किया गया। लार्ड कैनिंग पहले वायसराय बने। ब्रिटिश शासन के अधीन भारतीय प्रज्ञा को साम्राज्य के अन्य भागों की प्रजा के समान माना गया।

- भारतीय परिषद एक्ट,1861
  यह एक्ट भारतीय प्रशासन की व्यवस्था में एक युगांतकारी दस्तावेज था। भारतीय प्रशासन में सुधारों को प्रोत्साहित किया गया। प्रशासन में स्थानीय लोगों को प्रतिनिधित्व दिए जाने को स्वीकृति प्रदान की गई। प्रशासन को जनता से जोड़ने के उपाय किए गए। इस एक्ट के माध्यम से गवर्नर जनरल की परिषद में भारतीयों को नामजद करने का अधिकार दिया गया और गवर्नर जनरल की विधायी शक्तियों का विकेंद्रीकरण करते हुए अन्य प्रांतीय सरकारों को विधायी शक्तियां प्रदान की गई।

- भारतीय परिषद एक्ट, 1892
  इस एक्ट के लागू होने से पहले भारतीय परिदृश्य की सबसे बड़ी घटना भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना थी। कांग्रेस ने अपनी स्थापना से कई अधिवेशनों में भारतीय जनता द्वारा निर्वाचित

प्रतिनिधियों द्वारा प्रशासन में आवाज उठाने के मुद्दे को प्रमुखता प्रदान करते हुए इसकी मांग की। यह भी ध्यान देने योग्य बात है कि इससे पहले प्रशासन में केवल जमींदारों या राजाओं को ही मनोनीत किया जाता था। इस एक्ट के माध्यम से गवर्नर जनरल परिषद में अतिरिक्त सदस्यों की संख्या न्यूनतम 6 एवं अधिकतम 10 बढ़ा कर क्रमश: 10 एवं 12 कर दी। इन मनोनीत सदस्यों को कुछ सीमित अधिकारों सहित वार्षिक वित्तीय विवरण एवं लोकहित मामलों पर प्रश्न पूछने एवं चर्चा करने की सुविधा दी गई।

- भारतीय परिषद एक्ट,1909

भारतीय राष्ट्रवादियों का आग्रह लगातार बढ़ता जा रहा था कि प्रशासन में निर्वाचित भारतीयों को व्यापक अधिकार मिले ताकि स्थानीय प्रशासन में वह प्रभावी भूमिका निभा सकें। ऐसे माहौल में तत्कालीन भारत राज्य सचिव लार्ड मार्ले एवं वायसराय लार्ड मिंटो ने 1906-08 के दौरान कुछ संवैधानिक सुधारों का प्रस्ताव तैयार किया। इसे ही मार्ले-मिंटो सुधार कहा जाता है। इस एक्ट के माध्यम से केन्द्रीय एवं प्रांतीय विधान परिषदों में निर्वाचित सदस्यों की संख्या बढ़ाते हुए प्रांतीय विधान परिषदों में गैर-सरकारी बहुमत स्थापित किया गया। पहली बार पृथक निर्वाचन व्यवस्था का प्रावधान किया गया। मुसलमानों को प्रतिनिधित्व में विशेष रियायत दी गयी। ऐसी व्यवस्था की गई कि प्रांतीय विधान परिषदों में गैर सरकारी सदस्य तथा केंद्रीय विधान परिषद में सरकारी सदस्य बहुमत में रहे। गवर्नर जनरल की कार्यकारिणी में एक भारतीय सदस्य को नियुक्त करने की व्यवस्था करते हुए प्रथम भारतीय सदस्य के रूप में सत्येन्द्र सिन्हा की नियुक्ति हुई।अधिनियम की सबसे बड़ी त्रुटि यह थी कि इसने पृथक अथवा साम्प्रदायिक आधार पर निर्वाचन की पद्धति को लागू किया।

- भारतीय शासन एक्ट, 1919

यह एक्ट तत्कालीन भारतीय राज्य सचिव मोंटेग्यू और वायसराय लार्ड चेम्सफोर्ड की संयुक्त रिपोर्ट पर आधारित था। इस अधिनियम द्वारा भारतीय संवैधानिक प्रणाली में काफी बदलाव किए गए। अंग्रेजों द्वारा यह माना जाने लगा कि भारतीयों को स्वशासन हेतु तैयार किया जाना है अतएव यह प्रक्रिया शुरू की जाए परंतु इसकी अवधि और प्रक्रिया तय करने का अधिकार ब्रिटिशों ने अपने पास सुरक्षित रखा। केंद्रीय विधान परिषद के स्थान पर राज्य परिषद(उच्च सदन) एवं विधान सभा(निम्न सदन) वाले)द्विसदन व्यवस्था को अपनाया गया। इस एक्ट द्वारा द्वैध शासन की शुरूआत हुई जिसमें कुछ विषयों पर गवर्नर के पास एवं कुछ विषय निर्वाचित भारतीय प्रतिनिधियों के पास शक्तियां रखी गई। इसके बावजूद भी व्यवहार में केंद्रीय विधान परिषद का ही वर्चस्व बना रहा।

- साइमन कमीशन,1927

1919 के एक्ट में एक प्रावधान था कि उस एक्ट के क्रियान्वयन संबंधी परिप्रेक्ष्य एवं सुधार हेतु सुझाव देने के लिए दस वर्ष बाद एक आयोग नियुक्त किया जाएगा। परंतु दो वर्ष पूर्व ही सर जॉन साइमन कमीशन को इस कार्य हेतु नियुक्त कर दिया गया। भारतीयों ने इस कमीशन का विरोध

इसलिए किया कि इस आयोग में कोई भी भारतीय सदस्य नहीं था। इसी बीच 1929 में कांग्रेस ने लाहौर अधिवेशन में पूर्ण स्वराज की मांग के प्रस्ताव को पारित कर दिया था।

- भारतीय शासन एक्ट,1935

  यह भारतीय प्रशासन के लिए एक बहुत बड़ा दस्तावेज था। इसका भारतीय संविधान इतिहास में बहुत महत्वपूर्ण स्थान है। एक लगभग सबसे व्यापक एक्ट था। एक तमाम अपनी कमियों के बावजूद भारतीय प्रशासन में सुधार एवं स्थायित्व के नजरिए से काफी कुछ था। भारतीयों को प्रशासन की जिम्मेदारी दी गई। इस एक्ट में 321 अनुच्छेद एवं 10 अनुसूचियां थी। इसमें अखिल भारतीय संघ का प्रावधान किया गया था। केंद्र एवं प्रांतों के बीच विभिन्न विषयों की तीन सूचियां – संघीय, प्रांतीय एवं समवर्ती- बनाई गई। प्रांतीय विधानमंडलों को अनेक शक्तियां प्रदान की गई। मंत्रिपरिषद को विधानमंडलों के प्रति उत्तरदायी बनाया गया। इस एक्ट के अंतर्गत बर्मा को भारत से अलग किया गया और उड़ीसा व सिंध नामक दो नए प्रांत बनाए गए। इस अधिनियम में एक संघीय बैंक एवं संघीय न्यायालय की स्थापना का भी उल्लेख किया गया था।

  स्वतंत्र भारत के संविधान में इस एक्ट से काफी प्रावधान लिए गए थे।

- भारतीय स्वतंत्रता एक्ट,1947

  माउंटबेटन योजना के आधार पर 1947 में ब्रिटिश संसद द्वारा भारतीय स्वतंत्रता एक्ट प्रारित किया गया। इसमें भारत व पाकिस्तान इन दो डोमिनियनों की स्थापना के लिए 15 अगस्त 1947 तारीख तय की गई। भारत एवं पाकिस्तान के साथ-साथ बंगाल व पंजाब के विभाजन को भी स्वीकार किया गया। भारतीय रियासतें दोनों में से किसी भी डोमिनियन में शामिल हो सकेगी। ब्रिटिश संसद इन डोमिनियनों के विधान मंडल में कोई हस्तक्षेप नहीं करेगी। इस एक्ट द्वारा दो स्वतंत्र राष्ट्रों का गठन किया गया।

ज्ञान शांति मैत्री

1.3 सारांश

हमने देखा कि किस प्रकार भारतीय संविधान के इतिहास के उपर्युक्त चरण इसकी विकास यात्रा को प्रस्तुत करते हैं। इसमें हमने देखा कि भारतीय प्रशासन को प्रभावी बनाने के अपने उद्देश्य के साथ प्रारंभ की गई एक्ट परंपरा ने आगे चलकर भारतीय राष्ट्रवादियों के प्रबल दबाव के कारण स्थानीय स्वशासन को भी स्वीकार किया। जैसे-जैसे भारतीयों की भागीदारी प्रशासन में बढ़ी वैसे-वैसे एक्ट भी बदलने लगे। अंतत: भारतीय स्वंतत्रता एक्ट के साथ 1947 में भारत को स्वतंत्रता प्राप्त हुई।

1.4 बोध प्रश्न

1. भारतीय संविधान के इतिहास के प्रमुख चरणों को स्पष्ट कीजिए।
2. भारतीय शासन एक्ट 1935 पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए।
3. भारतीय शासन एक्ट 1947 पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए।

1.5 संदर्भ एवं उपयोगी ग्रंथ

- काश्यप, सुभाष(1995).*हमारा संविधान*. नई दिल्ली: नेशनल बुक ट्रस्ट.
- मेल्लील्ली, प्रवीणकुमार(2017).*भारत का संविधान, वृत्तिक आचारनीति और मानव अधिकार*. नई दिल्ली: सेज पब्लिकेशन्स.
- https://hi.wikipedia.org/wiki/भारतीय_संविधान
- http://india.gov.in/hi/my-government/constitution-india/constitution-india-full-text#p4

इकाई 2 भारतीय संविधान का परिचय

इकाई की रूपरेखा

2.0 उद्देश्य
2.1 प्रस्तावना
2.2 भारतीय संविधान का परिचय
2.3 सारांश
2.4 बोध प्रश्न
2.5 संदर्भ एवं उपयोगी ग्रंथ

2.0 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के पश्चात आप -

- भारतीय संविधान का परिचय प्राप्त कर सकेंगे

2.1 प्रस्तावना

भारतीय संविधान का निर्माण संविधान सभा द्वारा किया गया था। इसकी प्रक्रिया आजादी से पहले प्रारंभ हो चुकी थी। साथ ही स्वतंत्रता आंदोलन के समय ही कांग्रेस एवं अन्य राष्ट्रवादी संस्थाओं ने उन मूल्यों और तत्वों को प्रकट करना प्रारंभ कर दिया था जो आगे चलकर हमारे संविधान का हिस्सा बने। कमोबेश हमारा स्वतंत्रता आंदोलन जिन मूल्यों के लिए लड़ा गया उन्हीं मूल्यों को संविधान में स्थान प्रदान किया गया। कांग्रेस ने अपने कई अधिवेशनों और रिपोर्ट के माध्यम से आजाद भारत के संविधान का खाका प्रस्तुत किया था। जिन विभिन्न संवैधानिक विकास चरणों की चर्चा हमने पूर्व इकाई में की, उनमें भी इन अधिवेशनों और रिपोर्टों का महत्वपूर्ण योगदान रहा।

इस इकाई में हम भारतीय संविधान का परिचय प्राप्त करेंगे और उसकी रूपरेखा से परिचित होंगे।

2.2 भारतीय संविधान का परिचय

भारतीय संविधान निर्माण हेतु संविधान सभा आजादी से पूर्व ही बनाई गई थी। संविधान निर्माण निकाय की सदस्य संख्या 385 निर्धारित की गई थी। इस संख्या में चयनित प्रतिनिधि, भारतीय रियासतों के प्रतिनिधि, चीफ कमिश्नरों के चार प्रांतों के प्रतिनिधि शामिल थे। इस संविधान निर्माण सभा में कांग्रेस का बहुमत था। आजादी के बाद यह संविधान सभा एक प्रभुत्वसम्पन्न

ज्ञान शांति मैत्री

निकाय बन गई जिसे भारत के लिए एक आदर्श संविधान का निर्माण करना था जिसके जरिए नव स्वतंत्र राष्ट्र भारत उन्नति के पथ पर अग्रसर हो सके। पंडित जवाहर लाल नेहरू ने 13 दिसंबर 1946 को ऐतिहासिक उद्देश्य प्रस्ताव पेश किया जिसे 22 जनवरी 1947 को संविधान सभा ने स्वीकार किया। संविधान की निर्माण प्रक्रिया में श्री बी.एन. राव को संवैधानिक सलाहकार नियुक्त किया गया।

भारत के संविधान का पहला प्रारूप संविधान सभा की मंत्रणा शाखा ने अक्टूबर 1947 में तैयार किया। 29 अगस्त 1947 को डॉ.भीमराव अंबेडकर को प्रारूप समिति का सभापति नियुक्त किया गया। प्रारूप समिति द्वारा बनाए गए संविधान के प्रारूप को 21 फरवरी 1948 को संविधान सभा के सम्मुख प्रस्तुत किया गया। 26 नवंबर 1949 को संविधान सभा में भारत के संविधान को स्वीकार किया गया और 2 वर्ष11 माह 18 दिन में यह काम पूरा हुआ।26 जनवरी 1950 को संविधान को वास्तविक अमल में लाया गया। अतः 26 जनवरी का दिन भारत में गणतन्त्र दिवस तथा 26 नवंबर भारत के संविधान दिवस के रूप में मनाया जाता है। भारत के संविधान के निर्माण में डॉ भीमराव अम्बेडकर ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई, इसलिए उन्हें 'संविधान का निर्माता' कहा जाता है।

भारतीय संविधान की संरचना

वर्तमान समय में भारतीय संविधान के निम्नलिखित भाग हैं-

एक उद्देशिका,

465 धाराओं से युक्त 25 भाग,

12 अनुसूचियाँ,

5 अनुलग्नक (appendices) तथा

101 संशोधन।

(8 अगस्त 2016 को संसद ने वस्तु और सेवा कर (GST) पारित कर 101वां संविधान संशोधन किया।)

संविधान के उद्देश्यों को अभिव्यक्त करने से पूर्व एक प्रस्तावना प्रस्तुत की जाती है जो उसका सार भी कही जा सकती है। भारतीय संविधान की प्रस्तावना विश्व में सर्वश्रेष्ठ मानी जाती है और यह भी कहा जाता है कि इस पर अमेरिकी संविधान का प्रभाव है। प्रस्तावना वही वह माध्यम है जिसके जरिए हम सार रूप में भारतीय संविधान को समझ सकते हैं। इसके माध्यम से हम उसके सार, अपेक्षाओं, उद्देश्यों,लक्ष्यों एवं दर्शन को समझ सकते हैं। प्रस्तावना यह स्पष्ट करती है कि भारत का वास्तविक शासन जनता के हाथों में है। इसी कारण यह 'हम भारत के लोग' - इस वाक्य से प्रारम्भ होती है।

ज्ञान शांति मैत्री

संविधान की प्रस्तावना

*हम भारत के लोग, भारत को एक **सम्पूर्ण प्रभुत्व सम्पन्न, समाजवादी, धर्मनिरपेक्ष, लोकतंत्रात्मक गणराज्य** बनाने के लिए तथा उसके समस्त नागरिकों को :*
*सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक **न्याय,***
*विचार, अभिव्यक्ति, विश्वास, धर्म और उपासना की **स्वतंत्रता,***
*प्रतिष्ठा और अवसर की **समता***
प्राप्त करने के लिए
*तथा उन **सबमें व्यक्ति की गरिमा** और **राष्ट्र की एकता और अखंडता** सुनिश्चित करनेवाली **बंधुता** बढ़ाने के लिए*
दृढ संकल्प होकर अपनी इस संविधान सभा में आज तारीख 26 नवम्बर 1949 ई0 (मिति मार्ग शीर्ष शुक्ल सप्तमी, सम्वत् दो हजार छह विक्रमी) को एतदद्वारा
इस संविधान को अंगीकृत, अधिनियमित और आत्मार्पित करते हैं।

संविधान की प्रस्तावना 13 दिसम्बर 1946 को जवाहर लाल नेहरू द्वारा पास की गयी प्रस्तावना को आमुख भी कहते हैं। यह भी कहा जा सकता है कि पूरा संविधान इस प्रस्तावना का परिवर्धित रूप है। यह संविधान की मूल आत्मा है। यह वह आदर्श है जिसके माध्यम से संविधान मार्गनिर्देशन प्राप्त करता है। भारतीय संविधान की प्रस्तावना के अनुसार हमारे उदात्त मूल्य हैं –

- संप्रभुता
- समाजवाद
- लोकतंत्र
- पंथनिरेपक्षता
- गणराज्यीय स्वरूप
- न्याय
- स्वतंत्रता
- समानता
- बंधुता
- व्यक्ति की गरिमा और
- राष्ट्र की एकता और अखंडता (काश्यप: 45)

भारतीय संविधान के भाग

आमुख

भाग I: संघ और उसके क्षेत्र

भाग II: नागरिकता

भाग III: मूलभूत अधिकार

भाग IV: राज्य के नीति निर्देशक तत्व

भाग IV क : मूल कर्तव्य

भाग V: संघ

- **अध्याय I.- कार्यपालिका**
- **अध्याय II.- संसद**
- **अध्याय III.- राष्ट्रपति के विधायी अधिकार**
- **अध्याय IV.- संघ न्यायपालिका**
- **अध्याय V.- भारतीय नियंत्रक एवं महालेखाकार**

भाग VI: राज्य

- **अध्याय I.- सामान्य**
- **अध्याय II.- कार्यपालिका**
- **अध्याय III.- राज्य विधानमंडल**
- **अध्याय IV.- राज्यपाल के विधायी अधिकार**
- **अध्याय V.- राज्यों के उच्च न्यायालय**
- **अध्याय VI.- अधीनस्थल न्यायालय**

भाग VII: प्रथम अनुसूची के भाग ख में राज्य

भाग VIII: संघ राज्य क्षेत्र

भाग IX: पंचायत

भाग IXA: नगरपालिकाएं

भाग X: अनुसूचित जनजाति क्षेत्र

भाग XI: संघ और राज्यों के बीच संबंध

- **अध्याय I.- विधायी संबंध**
- **अध्याय II.- प्रशासनिक संबंध**

भाग XII: वित्त, सम्पत्ति, संविदाएं और वाद

- **अध्याय I.- वित्त**
- **अध्याय II.- उधार**
- **अध्याय III.- संपत्ति, संविदाएं, अधिकार, देयताएं, बाध्यताएं और वाद**
- **अध्याय IV.- संपत्ति का अधिकार**

भाग XIII: भारत के राज्य क्षेत्र के अंदर व्यापार, वाणिज्य और समागम

भाग XIV: संघ और राज्यों के अधीन सेवाएं

- **अध्याय I.- सेवाएं**
- **अध्याय II.- लोक सेवा आयोग**

भाग XIV क: अधिकरण

भाग XV: निर्वाचन

ज्ञान शांति मैत्री

भाग XVI: कुछ वर्गों के संबंध में विशेष उपबंध

भाग XVII: राजभाषा

अध्याय I.- संघ की भाषा

अध्याय II.- क्षेत्रीय भाषाएं

अध्याय III.- उच्चततम न्यायालय, उच्च न्यायालयों आदि की भाषा

अध्याय IV.-विशेष निर्देश

भाग XVIII: आपात उपबंध

भाग XIX: प्रकीर्ण

भाग XX: संविधान के संशोधन

भाग XXI: अस्थायी, संक्रमणकालीन और विशेष उपबंध

भाग XXII: संक्षिप्त नाम, प्रारंभ, हिन्दी में प्राधिकृत पाठ और निरसन

अनुसूचियाँ

पहली अनुसूची - - राज्य तथा संघ राज्य क्षेत्र का वर्णन।

दूसरी अनुसूची –

- भाग-क : राष्ट्रपति और राज्यपाल के वेतन-भत्ते
- भाग-ख : लोकसभा तथा विधानसभा के अध्यक्ष तथा उपाध्यक्ष, राज्यसभा तथा विधान परिषद् के सभापति तथा उपसभापति के वेतन-भत्ते,
- भाग-ग : उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीशों के वेतन-भत्ते,
- भाग-घ : भारत के नियंत्रक-महालेखा परीक्षकके वेतन-भत्ते।

तीसरी अनुसूची - व्यवस्थापिका के सदस्य, मंत्री, राष्ट्रपति, उपराष्ट्रपति, न्यायाधीशों आदि के लिए शपथ और प्रतिज्ञान के प्रारूप ।

चौथी अनुसूची - राज्यसभा में राज्यों तथा संघ राज्य क्षेत्रों से स्थानों का आवंटन ।

पाँचवी अनुसूची - अनुसूचित क्षेत्रों और अनुसूचित जन-जातियों के प्रशासन और नियंत्रण से संबंधित उपबंध।

छठी अनुसूची - असम, मेघालय, त्रिपुरा और मिजोरम राज्यों के जनजाति क्षेत्रों के प्रशासन के विषय मे उपबंध।

सातवीं अनुसूची -विषयों के वितरण से संबंधित सूची-1 संघ सूची, सूची-2 राज्य सूची, सूची-3 समवर्ती सूची।

आठवीं अनुसूची - 22 भाषाओं का उल्लेख।

नवीं अनुसूची - कुछ अधिनियमों का विधिमान्य करण।

दसवीं अनुसूची -दल परिवर्तन संबंधी उपबंध तथा परिवर्तन के आधार पर अर्हता निर्धारण।

ग्यारवीं अनुसूची - पंचायती राज संबंधी अनुसूची 73वें संवैधानिक संशोधन (1993) द्वारा जोड़ी गई।

बारहवीं अनुसूची - यह अनुसूची 74 वें संवैधानिक संशोधन द्वारा जोड़ी गई।

ज्ञान शांति मैत्री

भारतीय संविधान के अनुसार -

- भारत "राज्यों का संघ" है |
- नीति निर्देशक तत्व लोक कल्याणकारी राज्य की अवधारणा को प्रस्तुत करते हैं।
- भारतीय संविधान के अनुसार समस्त राजनीतिक शक्ति का आधार भारत की जनता है।
- "मूल कर्तव्यों" को 42 वें संविधान संशोधन (1976) द्वारा जोड़ा गया है। इस (42वें) संविधान संसोधन को लघु संविधान भी कहा जाता है।
- डॉ. भीमराव अम्बेडकर ने "अनुच्छेद ३२ (संवैधानिक उपचारों का अधिकार)" को भारतीय संविधान का सबसे महत्वपूर्ण हिस्सा मानते हुए इसे "संविधान की आत्मा" कहा है | नागरिकों के लिहाज से सबसे महत्वपूर्ण हिस्सा इसलिए है कि यदि किसी नागरिक को लगता है कि शासन, प्रशासन अथवा संस्था द्वारा संविधान द्वारा प्रदत्त उसके मौलिक अधिकारों का हनन किया जा रहा है तो वह उच्च न्यायालय या उच्चतम न्यायालय की शरण ले सकता है।

भारतीय संविधान के बनने के समय उसके समक्ष अनेक देशों के संविधान मौजूद थे। स्वयं संविधान निर्माताओं में बहुत-से ऐसे विद्वान थे जिन्होंने विश्व के बेहतरीन संविधानों का अध्ययन एवं मनन किया था। उनके व्यापक अध्ययन और ब्रिटिश उपनिवेशवाद के प्रशासन के कारण भारत के संविधान में कई अन्य देशों के संविधान के प्रावधानों का प्रभाव देखा जा सकता है और उन संविधानों की खूबियों को भारतीय संविधान में अपनी जरूरत के मुताबिक ढ़ाल कर अपनाया-

स्रोत	प्रभाव
अमेरिका	लिखित संविधान, प्रस्तावना, मौलिक अधिकार, स्वतंत्र न्यायपालिका, न्यायिक पुनरीक्षण, सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीशों की पदमुक्ति, राष्ट्रपति कार्यपालिका का प्रमुख और उप-प्रधानमंत्री उच्च सदन का पदेन अधिकारी
आस्ट्रेलिया	समवर्ती सूची, व्यापार एवं वाणिज्य संबंधी प्रावधान, केंद्र एवं राज्य संबंध, दोनों सदनों की संयुक्त बैठक
ब्रिटेन	संसदीय प्रणाली, एकल नागरिकता, विधि का शासन, विधि निर्माण प्रक्रिया, उत्तरदायी शासन
आयरलैंड	राज्य के नीति निदेशक तत्व, राष्ट्रपति का निर्वाचन, उच्च सदन में सदस्यों का नामांकन
फ्रांस	गणतंत्रीय व्यवस्था, स्वतंत्रता, समानता एवं बंधुत्व का सिद्धांत
कनाडा	सशक्त केंद्र के साथ संघीय व्यवस्था, शक्तियों का वितरण तथा अवशिष्ट शक्तियों का केंद्र की हस्तांतरण, राज्यों में राज्यपाल की केंद्र द्वारा नियुक्ति

भूतपूर्व सोवियत संघ	मौलिक कर्तव्य, प्रस्तावना में न्याय के आदर्श
जर्मनी	आपातकालीन प्रावधान
दक्षिण अफ्रीका	संविधान संशोधन प्रावधान, उच्च सदन के सदस्यों का निर्वाचन
जापान	विधि द्वारा स्थापित प्रक्रिया
1935 का भारत सरकार अधिनियम	संघ तथा राज्यों के बीच शक्तियों का विभाजन, राष्ट्रपति की आपातकालीन शक्तियां, अल्पसंख्यक वर्गों के हितों की रक्षा, उच्चतम न्यायालय के निचले स्तर के न्यायालयों पर नियंत्रण, केंद्रीय शासन का राज्य के शासन में हस्तक्षेप, व्यवस्थापिका के दो सदन।

2.3 सारांश

इस इकाई में हमने देखा कि भारतीय संविधान एक व्यापक एवं महत्वपूर्ण दस्तावेज है। सम्पूर्ण विश्व के संविधानों का अध्ययन करने के उपरांत नव स्वतंत्र राष्ट्र ने जिन मूल्यों और आदर्शों को अपना पथ प्रदर्शक चुना, भारतीय संविधान उन्हें ही प्रदर्शित करता है। इसकी विशेषता है कि यह व्यक्तिगत एवं सामाजिक मूल्यों के बीच; सामाजिक एवं आर्थिक हितों के बीच; व्यक्ति और शासन के बीच बेहतरीन तालमेल प्रस्तुत करता है। भारतीय संविधान का वर्तमान तक का सफर यह बताता है कि जिन मूल्यों की नींव पर इसे खड़ा किया गया था, अनेक संकटों का सामना करने के उपरांत भी भारतीय लोकतंत्र मजबूती से टिका हुआ है। जबकि भारत के साथ आजाद हुए अनेक राष्ट्र या तो तानाशाही की ओर मुड़ गए या गृहयुद्ध से जूझ रहे हैं। भारतीय संविधान की प्रासंगिकता भी यह है कि इसने विश्व के सबसे बड़े लोकतंत्र को बचाए रखा है।

ज्ञान शांति मैत्री

2.4 बोध प्रश्न

1. भारतीय संविधान के निर्माण पर प्रकाश डालिए।
2. भारतीय संविधान का परिचय दीजिए।
3. भारतीय संविधान की प्रस्तावना का उल्लेख कीजिए।

2.5 संदर्भ एवं उपयोगी ग्रंथ

- काश्यप, सुभाष(1995).*हमारा संविधान*. नई दिल्ली: नेशनल बुक ट्रस्ट.
- मेल्लीलल्ली, प्रवीणकुमार(2017).*भारत का संविधान, वृत्तिक आचारनीति और मानव अधिकार*. नई दिल्ली: सेज पब्लिकेशन्स.
- https://hi.wikipedia.org/wiki/भारतीय_संविधान
- http://india.gov.in/hi/my-government/constitution-india/constitution-india-full-text#p4

इकाई 3 भारतीय संविधान की विशेषताएं

इकाई की रूपरेखा

3.0 उद्देश्य
3.1 प्रस्तावना
3.2 भारतीय संविधान की विशेषताएं
3.3 सारांश
3.4 बोध प्रश्न
3.5 संदर्भ एवं उपयोगी ग्रंथ

3.0 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के पश्चात आप -

- भारतीय संविधान की विशेषताओं को रेखांकित कर सकेंगे

3.1 प्रस्तावना

भारतीय संविधान का निर्माण उन लोगों द्वारा किया गया था जो आजादी के आंदोलन से जुड़े हुए थे। उन्होंने आजाद भारत के निर्माण के लिए अपना एक आदर्श प्रस्तुत किया था। वे अंग्रेजी उपनिवेशी शासन व्यवस्था और उनकी क्रूरता को देख चुके थे। अपने इस अनुभव से सीख लेते हुए उन्होंने संविधान निर्माण के अंतर्गत ऐसे मूल्यों को स्थान प्रदान किया जिसके आधार स्वतंत्रता, समानता और बंधुत्व थे। जैसा कि पूर्व में भी कहा गया है कि भारतीय संविधान विश्व के सबसे बड़े लिखित संविधान में माना जाता है। संविधान किसी भी राजनीतिक व्यवस्था के लिए आधारभूत ढ़ाँचे का निर्माण करता है। वह देश के राजनीतिक एवं प्रशासनिक ढ़ांचे के लिए मार्गनिर्देशन प्रदान करता है।

इस इकाई में हम भारतीय संविधान की विशेषताओं से परिचित होंगे।

3.2 भारतीय संविधान की विशेषताएं

संविधान सभा द्वारा निर्मित संविधान में ऐसी कई बातें है जो उसे अन्य संविधानों से अलग कर विशिष्ट बनाती है। अब हम इन्हीं विशेषताओं का अध्ययन करेंगे (काश्यप, 1997 एवं मेल्लल्ली, 2017) –

- **लिखित एवं विशाल**

संविधान अलिखित और लिखित दोनों तरह के होते हैं। लिखित संविधान के उदाहरण अमेरिकी और भारत के संविधान हैं और अलिखित संविधान के उदाहरण ब्रिटिश और इजराइल के संविधान है।

भारतीय संविधान विश्व का सबसे बड़ा लिखित संविधान है। दूसरी ओर अमेरिकी संविधान सबसे छोटा लिखित संविधान है। अपने मूल स्वरूप में संविधान में एक प्रस्तावना, 22 भाग, 395 अनुच्छेद और 8 अनुसूचियां थी।

- **सार्वभौमिक वयस्क मताधिकार**

भारतीय स्वतंत्रता संग्राम के अंतर्गत हर बार इस बात पर जोर दिया गया था कि आजाद भारत में सभी वयस्क नागरिकों को मताधिकारी प्रदान किया जाएगा। संविधान सभा में इसे स्वीकार किया गया और एक व्यक्ति, एक मत के सिद्धांत को स्वीकार करते हुए बिना किसी भेदभाव के वयस्क मताधिकार प्रदान किया गया। आज भारत में जिस व्यक्ति ने 18 वर्ष की आयु पूरी कर ली है उसे मतदान का अधिकार प्राप्त है। भारत जैसे देश ने नव स्वतंत्र राष्ट्र होने के नाते सभी के सामने एक आदर्श स्थापित किया था और भारत में वयस्क मताधिकार प्रदान किया। उस समय भारत में शिक्षित लोगों का प्रतिशत काफी कम था परंतु संविधान सभा ने भारतीय जनता के विवेक को मान प्रदान करते हुए वयस्क मताधिकार प्रदान किया। वयस्कता की आयु पहले 21 वर्ष थी, परंतु 1989 में 61वें संविधान संशोधन द्वारा यह आयु सीमा घटाकर 18 वर्ष कर दी गई है।

- **कठोरता और नम्यता का मिश्रण**

भारतीय संविधान में कठोर और नम्यता दोनों ही दृष्टिकोणों का मिश्रण है। यह कठोर संविधान इसलिए कहा जाता है कि क्योंकि इसमें किसी भी संविधान संशोधन करने की एक निर्धारित प्रक्रिया है। इसमें आसानी से और मनचाहा परिवर्तन नहीं किया जा सकता है। इसके कुछ प्रावधानों में जटिल प्रक्रिया द्वारा ही संशोधन किया जा सकता है जिसमें संसद में विशेष बहुमत की आवश्यकता होती है। साथ ही यह नम्य संविधान इसलिए है कि इसमें संशोधन की प्रक्रिया सरल भी है। कुछ ऐसे संविधान संशोधन होते हैं जिसमें साधारण बहुमत से ही संशोधन हो जाते हैं अतएव भारतीय संविधान में दोनों तरह की विशेषताएं पाई जाती हैं।

- **संघात्मक एवं एकात्मक प्रणाली का समन्वय**

भारतीय संविधान में एकात्मक एवं संघात्मक शासन दोनों ही प्रणालियों की विशेषताएं पाई जाती है। इसे केवल एकात्मक इसलिए नहीं माना जा सकता है क्योंकि इसमें केंद्र एवं राज्यों के बीच कार्यपालक एवं विधायी शक्तियों का स्पष्ट विभाजन किया गया है। वहीं दूसरी ओर संघात्मक इसलिए कहा जा सकता है कि केंद्र की कार्यपालक एवं विधायी शक्तियां राज्य सूची में शामिल विषयों पर भी लागू होती है।

संघीय प्रणाली के तत्व

- लिखित संविधान
- द्विसदनीयता
- केंद्र एवं राज्यों के बीच विषयों का विभाजन
- संविधान की सर्वोच्चता
- स्वंतत्र न्यायपालिका
- संविधान की कठोरता आदि

एकात्मक प्रणाली के तत्व

- एकल संविधान
- एकल नागरिकता
- कठोर केंद्रीय सरकार

ज्ञान शांति मैत्री

- लचीला संविधान
- अखिल भारतीय संविधान
- राज्यपालों की नियुक्ति
- आपातकालीन प्रावधान
- एकीकृत न्यायप्रणाली
- एकीकृत चुनाव प्रणाली आदि

इस मिश्रण का कारण भारत की विविधता में ही छिपा हुआ है। इसलिए इसे राज्य संघ (यूनियन ऑफ स्टेट्स) पदनाम दिया गया है।

- **संसदीय प्रणाली**

भारत में संसदीय प्रणाली को अपनाया गया है। इस प्रणाली में मंत्रिमंडल(केबिनेट) सामूहिक रूप से संसद (विशेषत: लोकसभा) के प्रति उत्तरदायी होता है। लोकसभा में बहुमत प्राप्त राजनीतिक दल को सरकार बनाने का मौका मिलता है। प्रधानमंत्री देश का मुखिया होता है। भारत में इस प्रणाली को ब्रिटेन से स्वीकार किया गया है। राज्य और केंद्र स्तर पर संसदीय शासन प्रणाली को अपनाया गया है जिसमें मंत्रीगण सीधे जनता द्वारा निर्वाचित सदन के प्रति उत्तरदायी होते हैं। संसदीय प्रणाली में कार्यपालिका के उत्तरदायित्व की संकल्पना पर अधिक जोर दिया जाता है।

- **स्वतंत्र न्यायपालिका**

भारतीय संविधान में एक स्वतंत्र न्यायपालिका का प्रावधान किया गया है। उच्च न्यायालय एवं उच्चतम न्यायालय दोनों ही न्यायिक संरचना के भाग हैं। भारत में न्यायपालिका को यह अधिकार प्रदान किया गया है कि वह नागरिकों के मौलिक अधिकारों और स्वतंत्रताओं की रक्षा करें। साथ ही उससे अपेक्षा की जाती है कि वह संविधान का व्याख्या करें और कार्यपालिका द्वारा बनाए गए या लागू किए गए विधानों की वैधता की भी जाँच करें। उच्चतम न्यायालय का निर्णय सर्वोपरि होता है।

ज्ञान शांति मैत्री

- **मूल अधिकार**

अपने उपनिवेशी काल के दौरान भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन के नेताओं ने यह महसूस किया था कि स्वतंत्रता,समानता जैसे मूलभूत अधिकार हर व्यक्ति को प्रदान किया जाना चाहिए जिसे अंग्रेजी शासन काल में बाधित कर दिया गया था। इस पृष्ठभूमि में संविधान के भाग 3 में भारत के हर नागरिक को मूल अधिकार प्रदान किए गए है।ये ऐसे मूल अधिकार है जिनका अतिक्रमण राज्य भी नहीं कर सकता है। राज्य द्वारा पारित किए गए ऐसे कानून जिनसे व्यक्ति के मूल अधिकारों का उल्लंघन होता है, उनको व्यक्ति न्यायालय में चुनौती दे सकता है। संविधान की भावना के अनुकूल न माने जाने पर इस कानून को रद्द भी किया जा सकता है। इसके साथ ही संविधान निर्माताओं ने मूल अधिकारों के साथ ही प्रतिबंधों को संबंधित उपबंधों को शामिल किया। भारतीय संविधान में व्यक्ति के अधिकारों और सामाजिक हितों व राज्य सुरक्षा के बीच संतुलन स्थापित किया गया है।

- **नीति निदेशक तत्व**

भारतीय संविधान में आयरलैंड के संविधान से प्रेरित होकर नीति निदेशक तत्वों को शामिल किया गया है। एक राज्य को जिन आदर्शों से प्रेरित होकर नीति निर्माण करना चाहिए, उन्हीं निदेशक तत्वों को इसमें शामिल किया गया है। यह उन सामाजिक-आर्थिक एवं सांस्कृतिक आदर्शों को इंगित करते हैं जिनकी पूर्ति के लिए राज्य को विधान बना कर प्राप्त करने का प्रयास करना चाहिए। इनकी एक आलोचना यह है कि इन्हें मूल अधिकारों की तरह न्यायालय से लागू नहीं कराया जा सकता है। चाहे इन्हें न्यायालय से लागू नहीं कराया जा सकता परंतु नैतिक रूप से यह हर सरकार के लिए एक मार्गनिर्देशक का कार्य अवश्य करते हैं।

- **एकल नागरिकता**

भारतीय संविधान में राष्ट्रीय एकता और अखंडता को ध्यान में रखते हुए एकल नागरिकता का प्रावधान किया गया है। भारत में राज्यों की नागरिकता प्रदान नहीं की गई है जिस तरह से अमेरिका में प्रदान की गई है। यह नागरिकता बिना किसी भेदभाव के हर नागरिक को प्रदान की गई है। भारत में जम्मू एवं कश्मीर को छोड़कर यह प्रावधान सभी क्षेत्रों पर लागू होता है।

- **मूल कर्तव्य**

भारतीय संविधान में 42वें संशोधन द्वारा एक नया भाग जोड़ा गया और मूल कर्तव्यों को शामिल किया गया। इसके जरिए दस कर्तव्यों की एक संहिता निर्धारित की गई। वस्तुत: अधिकार और कर्तव्य एक दूसरे के पूरक हैं। एक व्यक्ति के अधिकार दूसरे व्यक्ति के कर्तव्य हैं। इन मूल कर्तव्यों का पालन करना हर नागरिक का कर्तव्य है।

- **न्यायिक सर्वोच्चता तथा संसदीय प्रभुता में संतुलन**

ब्रिटिश संसदीय प्रणाली में संसद को सर्वोच्च तथा प्रभुतासम्पन्न संस्था मानते हुए उसकी शक्तियों पर कोई अवरोध या पुनरीक्षण का प्रावधान नहीं किया गया है। वहीं दूसरी और अमेरिकी प्रणाली में उच्चतम न्यायाल सर्वोच्च संस्था है जिसमें उसे न्यायिक पुनरावलोकन एवं संविधान की व्याख्या की शक्ति दी गई है।
भारतीय संविधान में इन दोनों की ही विशेषताओं को अपनाते हुए मध्यम मार्ग अपनाया है। भारतीय संविधान के अंतर्गत विधायी क्षेत्र में संसद और न्यायिक क्षेत्र में उच्चतम न्यायालय सर्वोच्च है। उच्चतम न्यायालय संसद द्वारा पारित किसी विधि की संवैधानिकता की जाँच कर सकती है एवं संविधान की भावना के विपरीत होने पर अवैध व अमान्य कर सकती है। संविधान की व्याख्या कर सकती है। वहीं संसद संविधान में संशोधन कर सकती है।

- **जनता की प्रभुसत्ता**

भारतीय संविधान जनता की प्रभुसत्ता पर आधारित है। इसका अर्थ है कि इसमें अंतिम शक्ति भारतीय जनता को ही प्रदान की गई है। इसलिए संविधान की प्रस्तावना में कहा गया है कि, *हम भारत के लोग.दृढ़ संकल्प होकर अपनी इस संविधान सभा में आज दिनांक 26 नवंबर, 1949 ई. को एतद् द्वारा इस संविधान को अंगीकृत, अधिनियमित और आत्मार्पित करते हैं।*

ज्ञान शांति मैत्री

भारत की जनता में ही प्रभुसत्ता निहित है। यह संविधान भारत के लोगों ने अपने प्रतिनिधियों के माध्यम से स्वीकार किया है और संविधान में ही यह व्यवस्था की गई है कि इस देश का प्रशासन भारत की जनता द्वारा चुने गए प्रतिनिधियों के माध्यम से भारत की जनता संचालित करेगी।

- **पंथ निरपेक्षता**

भारतीय संविधान पंथनिरपेक्षता में विश्वास करता है। इसका अर्थ है कि भारतीय राज्य का कोई अधिकारिक धर्म नहीं है। भारतीय राज्य के नजरों में सभी नागरिक समान है और यह पंथ के आधार पर नागरिकों के बीच कोई विभेद नहीं करता है।

- **लोकतंत्रात्मक गणराज्य**

भारतीय संविधान में एक लोकतंत्रात्मक गणराज्य की स्थापना की गई है। इसका तात्पर्य है कि सत्ता का स्रोत भारत की जनता ही है। भारत में लोकतंत्र है जिसकी साधारण परिभाषा है – जनता का, जनता के लिए, जनता द्वारा शासन। भारतीय लोकतंत्र में जनता निर्वाचित प्रतिनिधयों के माध्यम से ही शासन किया जाता है। वयस्क मताधिकार के आधार पर चुनी गई सरकार जनता के हित के लिए कार्य करती है। भारतीय लोकतंत्र में यह व्यवस्था है कि हर व्यक्ति निर्वाचन के माध्यम से शासन के उच्च पदों तक पहुँच सकता है। इसके लिए किसी तरह के भेदभाव को स्वीकार नहीं किया गया है। भारत के शासन का प्रमुख वंशानुगत नहीं होता है। वह जनता द्वारा या उसके प्रतिनिधियों के माध्यम से चुना जाता है।

3.4 सारांश

इस इकाई में हमने देखा कि भारतीय संविधान एक मौलिक एवं व्यापक दस्तावेज है। इसमें कई ऐसी विशिष्टताएं हैं जो विरोधाभासी होते हुए भी भारतीय संविधान में एक साथ देखी जा सकती है – एकात्मक एवं संघात्मक शासन प्रणाली आदि। भारतीय संविधान में व्यक्ति के मूल अधिकार एवं कर्तव्य तथा सामाजिक एवं राष्ट्रीय एकता के तत्वों के बीच सामंजस्य स्थापित करने का प्रयास किया गया है। विविधता से पूर्ण राष्ट्र को एकता के सूत्र में बांधने और विभिन्न हितों के बीच सामंजस्य स्थापित किया गया है। भारत जैसे विशाल देश में लोकतंत्र की सफलता बताती है कि संविधान अपने लक्ष्यों में सफल हुआ है। भारत के साथ आजाद हुए राष्ट्रों में जहां लोकतंत्र और संविधान विफल हुए है वहीं दूसरी ओर भारत का लोकतंत्र और संविधान तमाम अपनी आलोचनाओं के सफलता की सीढिया चढ़ रहा है।

3.5 बोध प्रश्न

1. भारतीय संविधान विशेषताओं पर प्रकाश डालिए।
2. भारतीय संविधान में एकात्मक एवं संघात्मक प्रणाली का समन्वय है। कैसे?

3.6 संदर्भ एवं उपयोगी ग्रंथ

- काश्यप, सुभाष(1995).*हमारा संविधान*. नई दिल्ली: नेशनल बुक ट्रस्ट.
- मेल्लील्ली, प्रवीणकुमार(2017).*भारत का संविधान, वृत्तिक आचारनीति और मानव अधिकार*. नई दिल्ली: सेज पब्लिकेशन्स.

- https://hi.wikipedia.org/wiki/भारतीय_संविधान
- http://india.gov.in/hi/my-government/constitution-india/constitution-india-full-text#p4

ज्ञान शांति मैत्री

खंड - 2

भारतीय संविधान की अन्तर्वस्तु

इकाई 1 मूल अधिकार एवं कर्तव्य

इकाई की रूपरेखा

1.0 उद्देश्य
1.1 प्रस्तावना
1.2 मूल अधिकार और कर्तव्य
1.3 सारांश
1.4 बोध प्रश्न
1.5 संदर्भ एवं उपयोगी ग्रंथ

1.0 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के पश्चात आप -

1) संविधान द्वारा प्रदत्त मूल अधिकारों की जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।
2) संविधान में नागरिकों के लिए निर्धारित कर्तव्यों से अवगत होंगे।

1.1 प्रस्तावना

आजाद भारत के सामने एक ऐसे समाज निर्माण का कार्य था जहां सभी बिना किसी भेदभाव के समान अधिकारों का लाभ ले सकें। औपनिवेशिक समय में जिन मानवीय मूल अधिकारों के हनन को उन्होंने अनुभव किया था, संविधान निर्माता उन्हें हर एक नागरिक को प्रदान करना चाहते थे। मूल अधिकार के बिना व्यक्ति के विकास की बात बेमानी हो जाती है। व्यक्तित्व विकास के लिए मूल अधिकार अत्यन्त आवश्यक है। संविधान निर्माताओं ने आजादी के समय के विभिन्न प्रस्तावों में भी व्यक्ति के मूल अधिकारों के हनन को महत्वपूर्ण मानते हुए अंग्रेजी सरकार से मूल अधिकारों को लागू करने का आग्रह किया था।

मानवाधिकारों की सार्वभौम घोषणा (1948) में जिन मूल्यों और आदर्शों का उल्लेख किया गया था भारतीय संविधान में उन्हें स्वीकार किया गया है। भारतीय परिदृश्य के अंतर्गत अल्पसंख्यकों एवं सामाजिक रूप से हाशिए के समुदायों के अधिकारों को भी संरक्षण प्रदान किया गया है। यह कहा जा सकता है कि भारतीय संविधान में मूल अधिकारों का उल्लेख इसकी लोकतांत्रिक परम्परा एवं संविधान की सर्वोच्चता का ही स्वीकार है।

1.2 मूल अधिकार और कर्तव्य

भारतीय संविधान की प्रस्तावना में जिन आदर्शों और मूल्यों को अभिव्यक्त किया गया है वस्तुत: मूल अधिकार, कर्तव्य और नीति निदेशक तत्वों के माध्यम से उन्हें लागू करने का प्रयास किया गया है। भारतीय संविधान में यह स्पष्ट किया गया है कि शक्ति का स्रोत भारतीय जनता है अतएव राज्य की शक्तियों

की भी कुछ सीमाएं है जिनका पालन राज्य को भी करना होगा। मूल अधिकार इसलिए भी महत्वपूर्ण है कि ये राजनैतिक लोकतंत्र को बढ़ावा देते हुए विधि के शासन को स्थापित करने में योगदान देते हैं।

मूल अधिकारों की विशेषताएं (मेल्लल्ली : 25-26)

- न्यायोचित – मूल अधिकार को न्यायालय द्वारा लागू कराया जा सकता है। मूल अधिकारों के हनन के मामले में कोई भी व्यक्ति अदालत जा सकता है।
- राज्य के प्रति उत्तरदायी – ये अधिकार राज्य द्वारा ही लागू किए जा सकते हैं और राज्य के प्रति उत्तरदायी हैं।
- असीमित नहीं – मूल अधिकार असीमित नहीं है। राज्य द्वारा उन पर उचित प्रतिबंध लगाए जा सकते हैं। हालांकि न्यायालय इन प्रतिबंधों की सुनवाई और समीक्षा कर सकता है।
- संशोधनीय – मूल अधिकार संविधान द्वारा प्रदत्त हैं। इनमें संशोधन किया जा सकता है।

संविधान द्वारा प्रदत्त मूल अधिकार

भारतीय संविधान द्वारा भारतीय नागरिकों को 7 मूल अधिकार प्रदान किए गए थे, किन्तु 44वें संवैधानिक संशोधन (1979) द्वारा सम्पत्ति के अधिकार को मूल अधिकार के रूप में समाप्त कर दिया गया है। अब सम्पत्ति का अधिकार केवल एक कानूनी-अधिकार के रूप में है। भारतीय संविधान के भाग 3 में शामिल मूल अधिकारों को सामान्यत: छह श्रेणियों में बांट कर देखा जाता है

(1) समानता का अधिकार, (2) स्वतन्त्रता का अधिकार, (3) शोषण के विरूद्ध अधिकार, (4) धार्मिक स्वतन्त्रता का अधिकार, (5) संस्कृति तथा शिक्षा सम्बन्धी अधिकार, (6) संवैधानिक उपचारों का अधिकार।

(1) समानता का अधिकार (अनुच्छेद 14 -18) :

(i) कानून के समक्ष समानता (अनुच्छेद 14):- अनुच्छेद 14 के अनुसार राज्य व्यक्ति को भारत के राज्य क्षेत्र में विधि के समक्ष समता और विधियों के समान संरक्षण से वंचित नहीं कर सकता है। राज्य सभी व्यक्तियों के लिए एक-सा कानून बनाएगा तथा उन्हें एकसमान लागू करेगा। वहीं राज्य समान परिस्थितियों में समान व्यवहार के कानून को लागू करता है। लेकिन यदि परिस्थितियों में अंतर है तो राज्य द्वारा बनाए एवं लागू किए गए कानून को समानता का उल्लंघन नहीं कहा जा सकता है।

(ii)धर्म, मूलवंश, जाति, लिंग या जन्मस्थान के आधार पर भेदभाव का निषेध (अनुच्छेद 15):-अनुच्छेद 15 में कहा गया है कि ''राज्य के द्वारा धर्म, मूलवंश, जाति, लिंग, जन्मस्थान, आदि के आधार पर नागरिकों के प्रति जीवन के किसी क्षेत्र में भेदभाव नहीं किया जाएगा।'' कानून के द्वारा सुनिश्चित किया गया है कि सब नागरिकों के साथ दुकानों, होटलों तथा सार्वजनिक स्थानों, जैसे कुओं, तालाबों, स्नानगृहों, सड़कों, आदि के प्रयोग के सम्बन्ध में किसी भी प्रकार का भेदभाव नहीं किया जाएगा।

(iii) लोकनियोजन में अवसर की समानता (अनुच्छेद 16):- अनुच्छेद 16 के अनुसार सब नागरिकों को राज्य के अधीन पदों पर नियुक्ति के समान अवसर प्राप्त होंगे और इस सम्बन्ध में केवल धर्म, मूलवंश, जाति, लिंग या जन्मस्थान या इनमें से किसी के आधार पर सरकारी नौकरी या पद प्रदान करने में भेदभाव नहीं किया जाएगा। इसके साथ ही राज्य को यह अधिकार है कि वह राजकीय सेवाओं के लिए आवश्यक योग्यताएं निर्धारित कर दे। संसद कानून द्वारा संघ में सम्मिलित राज्यों को अधिकार दे सकती है कि वे उस पद के उम्मीदवार के लिए राज्य का निवासी होना आवश्यक ठहरा दें। इसी प्रकार सेवा में पिछड़े हुए वर्गों के लिए भी स्थान आरक्षित किये जा सकते हैं।

(iv)अस्पृश्यता का निषेध (अनुच्छेद 17):- समाज में समानता की भावना को मूर्त रूप प्रदान करने के लिए अस्पृश्यता का निषेध किया गया है। अनुच्छेद 17 में कहा गया है कि अस्पृश्यता का अन्त किया जाता है और उसका किसी भी रूप में आचरण निषिद्ध किया जाता है। संसद द्वारा 1955 में 'अस्पृश्यता अपराध अधिनियम'(Untouchability Offences Act) पारित किया गया जो पूरे भारत में लागू होता है। इस कानून के अनुसार अस्पृश्यता एक दण्डनीय अपराध घोषित किया गया है।1989 में इस कानून को और अधिक कठोर बनाते हुए इसे अनुसूचित जाति व जनजाति निरोधक कानून 1989 का नाम दे दिया गया। यह कानून अस्पृश्यता के अन्त के लिए अब तक बनाये गये कानूनों में सबसे अधिक कठोर है। 2015 में पुन: इसमें संशोधन किए गए जो जनवरी 2016 से लागू हो गए हैं।

(v)उपाधियों का निषेध (अनुच्छेद 18):- अनुच्छेद 18 में व्यवस्था की गई है कि ''सेना अथवा विद्या सम्बन्धी उपाधियों के अलावा राज्य अन्य कोई उपाधियां प्रदान नहीं कर सकता।'' इसके साथ ही भारत का कोई नागरिक बिना राष्ट्रपति की आज्ञा के विदेशी राज्य से भी कोई उपाधि स्वीकार नहीं कर सकता। इसके बावजूद भारत सरकार द्वारा 1950 से ही भारत रत्न, पद्म विभूषण, पद्म भूषण और पदम् श्री की उपाधियां प्रदान की जाती रही है।

ज्ञान शांति मैत्री

(2) स्वतन्त्रता का अधिकार (अनुच्छेद 19-22):

भारतीय संविधान इसके सभी नागरिकों को विचार, अभिव्यक्ति, विश्वास, धर्म और उपासना की स्वतंत्रता प्रदान करता है। इस सम्बन्ध में अनुच्छेद 19 सबसे अधिक महत्वपूर्ण है।

मूल संविधान के अनुच्छेद 19 द्वारा नागरिकों को 7 स्वतन्त्रताएं प्रदान की गई थीं ,4वें संवैधानिक संशोधन द्वारा सम्पत्ति के मौलिक अधिकार के साथ-साथ 'सम्पत्ति की स्वतन्त्रता' भी समाप्त कर दी गई है और अब 19वें अनुच्छेद के अन्तर्गत नागरिकों को 6 स्वतन्त्रताएं ही प्राप्त हैं।

(i) भाषण और अभिव्यक्ति की स्वतन्त्रता: भारत के सभी नागरिकों को विचार प्रकट करने, भाषण देने और अपने तथा अन्य व्यक्तियों के विचारों के प्रचार की स्वतन्त्रता प्राप्त है। विचारों के प्रचार का एक साधन होने के कारण इसी में प्रेस की स्वतन्त्रता भी शामिल है। लोकतंत्र बिना वैचारिक स्वतंत्रता के जीवित नहीं रह सकता है। यह स्वतंत्रता ही लोकतंत्र का प्राण है। परंतु यह स्वतंत्रता असीमित नहीं है। राज्य की सुरक्षा,

विदेशों के साथ मैत्रीपूर्ण संबंध, लोक व्यवस्था, शिष्टाचार और सदाचार, न्यायालय की अवमानना, मानहानि, अपराध के लिए प्रोत्साहन और भारत की संप्रभुता तथा अखंडता के हितों या आधारों पर इस अधिकार के प्रयोग पर युक्तियुक्त सीमाएं या प्रतिबंध लगाए जा सकते हैं।

(ii)अस्त्र-शस्त्र रहित तथा शान्तिपूर्वक सम्मेलन की स्वतन्त्रता: लोकतंत्र में सभाएं, जुलूस, प्रदर्शन इत्यादि लोगों के बीच अपने विचारों के प्रचार-प्रसार के माध्यम होने के कारण लोकतंत्र का सहज हिस्सा है। अत: इन्हें शांतिपूर्ण तरीके से आयोजित किए जाने की स्वतंत्रता प्रदान की गई है। यह भी असीमित नहीं है और भारत की एकता व अखंडता तथा लोक व्यवस्था के हित में इसे युक्तियुक्त प्रतिबंध लगा कर सीमित किया जा सकता है।

(iii) समुदाय और संघ के निर्माण की स्वतन्त्रता: सभी नागरिकों को समुदायों और संघ के निर्माण की स्वतन्त्रता प्रदान की गई है, परन्तु भारत की संप्रभुता व अखंडता तथा लोकव्यवस्था के हित में इस पर प्रतिबंध लगाया जा सकता है।

(iv) अबाध भ्रमण की स्वतन्त्रता: भारत का प्रत्येक नागरिक पूरे राज्य क्षेत्र में बिना किसी प्रतिबन्ध या विशेष अधिकार-पत्र के घूम सकते हैं । परंतु राज्य लोकहित और अनुसूचित जातियों तथा जनजातियों के हित में उचित प्रतिबंध लगा सकता है।

(v) अबाध निवास की स्वतन्त्रता: भारत का प्रत्येक नागरिक पूरे राज्य क्षेत्र में बिना किसी प्रतिबन्ध के अस्थायी/स्थायी निवास कर सकता है। परंतु राज्य लोकहित और अनुसूचित जातियों तथा जनजातियों के हित में उचित प्रतिबंध लगा सकता है।

(vi) वृत्ति, उपजीविका या कारोबार की स्वतन्त्रता: संविधान द्वारा प्रत्येक नागरिक को वृत्ति, उद्यम,उपजीविका, व्यापार अथवा व्यवसाय की स्वतन्त्रता प्रदान की है, किन्तु राज्य जनता के हित में इन स्वतन्त्रताओं पर उचित प्रतिबन्ध लगा सकता है। राज्य किन्हीं व्यवसायों को करने के लिए आवश्यक योग्यताएं निर्धारित कर सकता है अथवा किसी कारोबार या उद्योग को पूर्ण अथवा आंशिक रूप से स्वयं अपने हाथ में ले सकता है।

संविधान द्वारा प्रदत्त ये स्वतंत्रताएं न केवल व्यक्ति के विकास के लिए अपितु लोकतंत्र के विकास के लिए भी आवश्यक है। संविधान द्वारा प्रदत्त स्वतंत्रताएं राज्य द्वारा प्रदान किए जाने के बावजूद भी कुछ परिस्थितियों में इन पर युक्तियुक्त प्रतिबंध लगा सकता है।इसके साथ ही न्यायालय को इस युक्तियुक्तिता के निर्धारण को परीक्षण करने का अधिकार दिया गया है।

अपराध को दोष सिद्धि के विषय में संरक्षण (अनुच्छेद 20): अनुच्छेद 20 में कहा गया है कि किसी व्यक्ति को उस समय तक अपराधी नहीं ठहराया जा सकता जब तक कि उसने अपराध के समय में किसी कानून का उल्लंघन न किया हो। इसके साथ ही एक अपराध के लिए व्यक्ति को एक ही बार दण्ड दिया जा सकता है

ज्ञान शांति मैत्री

और किसी अपराध में अभियुक्त व्यक्ति को स्वयं अपने विरूद्ध गवाही देने के लिए बाध्य नहीं किया जा सकता।

जीवन तथा वैयक्तिक स्वतन्त्रता का संरक्षण (अनुच्छेद 21): अनुच्छेद 21 यह प्रावधान करता है कि किसी व्यक्ति को विधि द्वारा स्थापित प्रक्रिया को छोड़कर अन्य किसी प्रकार से उसके जीवन तथा उसकी वैयक्तिक स्वतंत्रता से वंचित नहीं किया जा सकता। संविधान के लागू होने से अब तक जीवन तथा वैयक्तिक स्वतंत्रता के अधिकार की व्याख्या में सर्वोच्च न्यायालय ने आवास, स्वास्थ्य,मानवीय गरिमा, स्वस्थ पर्यावरण आदि अनेक आयामों को भी शामिल किया है।

शिक्षा का अधिकार (अनुच्छेद 21A): 86वें संविधान संशोधन द्वारा (2002) 6 से14 वर्ष की आयु के सभी बच्चों/बच्चियों के लिए मुफ्त एवं अनिवार्य शिक्षा प्रदान करने का अधिकार प्रदान किया गया है।

गिरफ्तारी तथा निरोध से संरक्षण (अनुच्छेद 22):-अनुच्छेद 22 के द्वारा बन्दी बनाएजाने वाले व्यक्ति को कुछ अधिकार प्रदान किए गए हैं। किसी गिरफ्तार व्यक्ति को कारणों को बताए बिना निरूद्ध नहीं रखा जा सकता है, उसे वकील से परामर्श करने और बचाव करने के अधिकार से वंचित नहीं किया जा सकता है। साथ ही गिरफ्तारी के 24 घंटे के भीतर निकटतम मजिस्ट्रेट के सामने पेश करना होगा। यह अधिकार निवारक निरोध और विदेशियों के मामले में लागू नहीं होते हैं।

(3) शोषण के विरूद्ध अधिकार (अनुच्छेद 23 और 24):

मानव के दुर्व्यापार और बलात् श्रम का प्रतिषेध (अनुच्छेद 23)- अनुच्छेद 23 द्वारा मानव के अवैध दुर्व्यापार, बेगार और अन्य बलात श्रम को निषिद्ध ठहराया गया है जिसका उल्लंघन दण्डनीय अपराध है। इस अधिकार का एक महत्वपूर्ण अपवाद है जो राज्य को लोक प्रयोजनों हेतु अनिवार्य सेवा आरोपित करने की इजाजत देता है। लेकिन ऐसा करते समय राज्य नागरिकों के बीच धर्म, मूलवंश, जाति, वर्ण या सामाजिक स्तर के आधार पर कोई भेदभाव नहीं करेगा।

बाल श्रम का निषेध(अनुच्छेद 24):- इसके अनुसार 14 वर्ष से कम आयु वाले किसी बच्चे को कारखानों, खानों या अन्य किसी जोखिम भरे काम पर नियुक्त नहीं किया जा सकता, लेकिन बच्चों को अन्य प्रकार के कार्यों में लगाया जा सकता है।परंतु इससे संबंधित सरकार द्वारा जारी निर्देशों का पालन करना अनिवार्य है।

(4) धार्मिक स्वतन्त्रता का अधिकार (अनुच्छेद 25-28)

अन्तःकरण की स्वतन्त्रता(अनुच्छेद 25)- इसमें कहा गया है कि सभी व्यक्तियों को – न केवल नागरिकों को- अंत:करण की स्वतंत्रता और धर्म के अबाध रूप से मानने, आचरण करने और प्रचार करने का बराबर का हक होगा। किंतु यह अधिकार लोक व्यवस्था, सदाचार और स्वास्थ्य के अधीन है। इस अधिकार में बलात धर्म परिवर्तन का कोई अधिकार शामिल नहीं है।

धार्मिक कार्यों के प्रबंध की स्वतंत्रता(अनुच्छेद 26): यह अनुच्छेद सभी धार्मिक संप्रदायों और उनकी शाखाओं को यह अधिकार देता है कि वे धार्मिक और मूर्त प्रयोजनों के लिए संस्थाओं की स्थापना और उनका पोषण कर सकते हैं, धर्म विषयक अपने कार्यों का प्रबंधन कर सकते हैं और उन्हें संपत्ति के स्वामित्व, अर्जन और प्रबंधन का अधिकार होगा। साथ ही यह भी उल्लेखनीय है कि संपत्ति का प्रशासन विधि के अनुसार होना जरूरी है। यह अधिकार भी लोक व्यवस्था, सदाचार और स्वास्थ्य के अधीन है।

धर्म की अभिवृद्धि के लिए कर न देने की स्वतंत्रता(अनुच्छेद 27): किसी भी व्यक्ति को किसी विशिष्ट धर्म की अभिवृद्धि में व्यय के लिए कर देने को बाध्य नहीं किया जा सकता है।यह व्यवस्था पंथनिरपेक्षता के अनुकूल है।

धार्मिक शिक्षा में उपस्थित न होने की स्वतंत्रता (अनुच्छेद 28): इसके अनुसार पूर्ण राज्य द्वारा पोषित शिक्षा संस्थान में किसी प्रकार की धार्मिक शिक्षा देने का प्रतिषेध किया गया है। राज्य द्वारा अन्य मान्यता तथा सहायता प्राप्त संस्थाओं में प्रत्येक व्यक्ति को धार्मिक शिक्षा /उपासना में उपस्थित न होने की स्वतंत्रता होगी।

(5) संस्कृति और शिक्षा सम्बन्धी अधिकार (अनुच्छेद 29 और 30)

अल्पसंख्यक वर्गों के हितों का संरक्षण(अनुच्छेद 29): भारत में निवास करने वाले नागरिकों को अपनी विशेष भाषा, लिपि या संस्कृति को बनाए रखने का अधिकार है। राज्य द्वारा पोषित या सहायता प्राप्त संस्था में धर्म,मूलवंश, जाति या भाषा के आधार पर प्रवेश में भेदभाव नहीं किया जा सकता है।

शिक्षा संस्थानों की स्थापना एवं प्रबंधन करने का अल्पसंख्यक वर्गों का अधिकार(अनुच्छेद 30): इसके अनुसार धर्म या भाषा पर आधारित सभी अल्पसंख्यक वर्गों को अपनी रुचि की शैक्षणिक संस्थाओं की स्थापना तथा उनके प्रबंध का अधिकार होगा। साथ ही व्यवस्था की गई है कि शिक्षण संस्थाओं को अनुदान देने में राज्य भेदभाव नहीं करेगा।

ज्ञान शांति मैत्री

यह अधिकार भी राज्य की नियामक शक्ति के अधीन है। राज्य सार्वजनिक हित की रक्षा के क्रम में इन पर नियंत्रण कर सकता है।

(6) संवैधानिक उपचारों का अधिकार (अनुच्छेद 32)

मूल अधिकारों की सार्थकता इसी बात में हैं कि उन्हें क्रियान्वित किया जा सके और यदि उनका उल्लंघन हो तो उसके विरूद्ध सरंक्षण हो सके। वस्तुत: यह अनुच्छेद इसी बात को महत्ता प्रदान करता है। यह अनुच्छेद मूल अधिकारों को लागू करने के लिए समुचित कार्यवाही के अंतर्गत न्यायालय को इनका रक्षक और सुनिश्चित करने वाला भी बनाता है। डॉ. बाबासाहब अम्बेडकर के अनुसार तो यह अनुच्छेद संविधान की वास्तविक आत्मा और हृदय है। इसके अंतर्गत कोई भी व्यक्ति अपने मूल अधिकारों के उल्लंघन के मामले में सीधे उच्च या उच्चतम न्यायालय जा सकता है।

सर्वोच्च और उच्च न्यायालयों द्वारा नागरिकों के मूल अधिकारों की रक्षा के लिए निम्नलिखित *पांच* प्रकार के लेख (रीट)जारी किए जा सकते हैं:

(अ) बन्दी प्रत्यक्षीकरण (Habeas Corpus) – यह रिट उस व्यक्ति की प्रार्थना पर जारी किया जाता है जिसे लगता है कि उसे अवैध रूप से बंदी बनाया गया है। इसका उद्देश्य बंदी बनाए गए व्यक्ति को न्यायालय में प्रस्तुत करना है तथा न्यायालय उसे बंदी बनाए जाने की वैधता की जांच करता है। यदि व्यक्ति को अवैध रूप से बंदी बनाया गया है तो उसे रिहा किया जा सकता है। यह मनमानी ढ़ंग से और अवैध रूप से व्यक्ति को बंदी बनाए जाने के विरूद्ध व्यक्तिगत स्वतंत्रता का एक साधन है।

(ब) परमादेश (Mandamus)- यह आदेश उच्चतर न्यायालय द्वारा अवर कोर्ट एवं सरकारी अधिकारियों/निकायों के लिए जारी किया जाता है जिसके जरिए उन्हें सार्वजनिक कर्तव्य का पालन करने को कहा जाता है।

(स) प्रतिषेध (Prohibition) - यह रिट सर्वोच्च न्यायालय तथा उच्च न्यायालयों द्वारा अधीनस्थ न्यायालयों तथा अर्ध-न्यायिक न्यायाधिकरणों को जारी करते हुए आदेश दिया जाता है कि संबंधित मामले में अपने यहां कार्यवाही न करें, क्योंकि यह मामला उनके अधिकार क्षेत्र के बाहर है।

(द) उत्प्रेषण (Certiorari) :-यह रिट उच्चतम या उच्च न्यायालय द्वारा अधीनस्थ न्यायालय को जारी की जाती है। इसमें यह कहा जाता है कि अधीनस्थ न्यायालय संबंधित मामले को उच्चतम/उच्च न्यायालय में भेजे ताकि अधीनस्थ न्यायाल अपने अधिकार क्षेत्र से बाहर जाकर अपनी शक्ति से अधिक अधिकारों का उपभोग न करें। इस रिट के आधार पर उच्च न्यायालय अधीनस्थ न्यायाधीशों से किन्हीं विवादों के सम्बन्ध में सूचना भी प्राप्त कर सकते हैं।

(य) अधिकार-पृच्छा (Quo-warranto)- इस रिट के माध्यम से उच्चतर न्यायालय द्वारा सार्वजनिक कार्यालय या पद पर आसीन व्यक्ति को पूछा जाता है कि वह किस आधार पर इस पद पर कार्य कर रहा है और जब तक वह इस प्रश्न पर सन्तोषजनक उत्तर नहीं देता, वह कार्य नहीं कर सकता।

भारत में रहने वाला व्यक्ति साधारण परिस्थितियों में न्यायालयों की शरण लेकर अपने मौलिक अधिकारों की रक्षा कर सकता है लेकिन युद्ध, बाहरी आक्रमण या सशस्त्र विद्रोह जैसी परिस्थितियों में जबकि राष्ट्रपति के द्वारा संकटकाल की घोषणा कर दी गई हो, मौलिक अधिकारों की रक्षा के लिए कोई व्यक्ति किसी न्यायालय से प्रार्थना नहीं कर सकेगा। इस प्रकार संविधान द्वारा संकटकाल में नागरिकों के मौलिक अधिकारों (जीवन और व्यक्तिगत स्वतन्त्रता के अधिकार को छोड़कर) को स्थगित करने की व्यवस्था की गई है।

सम्पत्ति का अधिकार

भारतीय नागरिकों को वर्तमान समय में (1979 और इसके बाद) सम्पत्ति का अधिकार मूल अधिकार के रूप में प्राप्त नहीं है, लेकिन 44वें संवैधानिक संशोधन (30 अप्रैल, 1979) के पूर्व तक सम्पत्ति का अधिकार मूल

अधिकार के रूप में प्राप्त था। 1950 से लेकर 1978 तक इस अधिकार के सम्बन्ध में अनेक संवैधानिक संशोधन हुए और यह अधिकार बहुत विवाद का विषय रहा।

मूल कर्तव्य

अधिकार और कर्तव्य दोनों एक-दूसरे के पूरक हैं। एक व्यक्ति के कर्तव्य के पालन में ही उसके अधिकारों की प्राप्ति निहित है। मूल संविधान में मूल कर्तव्य शामिल नहीं थे। 1975 के आपातकाल के अनुभव के बाद राजनैतिक स्तर पर यह चेतना बनी कि संविधान में मूल कर्तव्यों को भी शामिल किया जाना चाहिए।

सरदार स्वर्ण सिंह की अध्यक्षता वाली समिति (1976) की सिफारिश के आधार पर भारत सरकार ने 1976 में 42वें संविधान संशोधन अधिनियम द्वारा मूल कर्तव्यों को संविधान का अंग बनाया। इस अनुच्छेद को 51 क नाम दिया गया। 42 वें संविधान संशोधन में मूल कर्तव्य (10) जोड़े गये है।वर्तमान में ये 11 हैं।11 वाँ मूल कर्तव्य 86 वें संविधान संशोधन में जोड़ा गया।

51 क. मूल कर्तव्य- भारत के प्रत्येक नागरिक का यह कर्तव्य होगा कि वह-

(क) संविधान का पालन करे और उस के आदर्शों, संस्थाओं, राष्ट्र ध्वज और राष्ट्रगान का आदर करे ;

(ख) स्वतंत्रता के लिए हमारे राष्ट्रीय आंदोलन को प्रेरित करने वाले उच्च आदर्शों को हृदय में संजोए रखे और उन का पालन करे;

(ग) भारत की प्रभुता, एकता और अखंडता की रक्षा करे और उसे अक्षुण्ण रखे;

(घ) देश की रक्षा करे और आह्वान किए जाने पर राष्ट्र की सेवा करे;

(ङ) भारत के सभी लोगों में समरसता और समान भ्रातृत्व की भावना का निर्माण करे जो धर्म, भाषा और प्रदेश या वर्ग पर आधारित सभी भेदभाव से परे हो, ऐसी प्रथाओं का त्याग करे जो स्त्रियों के सम्मान के विरुद्ध है;

(च) हमारी सामासिक संस्कृति की गौरवशाली परंपरा का महत्व समझे और उस का परिरक्षण करे;

(छ) प्राकृतिक पर्यावरण की, जिस के अंतर्गत वन, झील नदी और वन्य जीव हैं, रक्षा करे और उस का संवर्धन करे तथा प्राणि मात्र के प्रति दयाभाव रखे;

(ज) वैज्ञानिक दृष्टिकोण, मानववाद और ज्ञानार्जन तथा सुधार की भावना का विकास करे;

(झ) सार्वजनिक संपत्ति को सुरक्षित रखे और हिंसा से दूर रहे;

(ञ) व्यक्तिगत और सामूहिक गतिविधियों के सभी क्षेत्रों में उत्कर्ष की ओर बढ़ने का सतत प्रयास करे जिस से राष्ट्र निरंतर बढ़ते हुए प्रयत्न और उपलब्धि की नई ऊंचाइयों को छू ले;

(ट) यदि माता-पिता या संरक्षक है, छह वर्ष से चौदह वर्ष तक की आयु वाले अपने, यथास्थिति, बालक या प्रतिपाल्य के लिए शिक्षा का अवसर प्रदान करे।

मूल कर्तव्यों को न्यायालय द्वारा प्रवर्तित नहीं कराया जाता है। उनका पालन कराने या उल्लंघन होने पर दंड संबंधी कोई उपबंध नहीं है। वस्तुत: इन कर्तव्यों का पालन करना नागरिको का नैतिक दायित्व है। इन मूल कर्तव्यों का स्रोत भारतीय परंपरा में पहले से मौजूद थे। यह कर्तव्य केवल भारतीय नागरिकों पर ही लागू होता

है। मूल अधिकारों को पालन करने का तरीका है कि लोगों को कर्तव्यों के बारे में सजग एवं जागरूक किया जाए। साथ ही ऐसा वातावरण भी निर्मित किया जाए जिसमें वह कर्तव्यों का पालन सुचारू रूप से कर सके।

1.4 सारांश

इस इकाई में हमने देखा कि भारतीय संविधान में मूल अधिकारों एवं कर्तव्यों का उल्लेख भारत में लोकतांत्रिक एवं गणतंत्र को मजबूत करने का ही प्रयास है। व्यक्ति की उन्नति के हर पहलू को स्थान दिया गया और यह प्रयास किया गया कि हर व्यक्ति को बिना किसी भेदभाव के व्यक्ति विकास के उचित एवं पर्याप्त अवसर मिले। यह अधिकार अन्य साधारण कानूनों की तुलना में बेहतर है। ये व्यक्ति को राज्य की तानाशाही, निरकुंश शासन को रोकने का अवसर भी प्रदान करते हैं। मूल अधिकार व्यक्ति की स्वतंत्रता को सुनिश्चित करते हैं। विधि के शासन को सुनिश्चित करने का प्रयास करते हैं। विभिन्न स्वतंत्रताओं एवं समानताओं का उल्लेख आजादी भारत के सामाजिक परिदृश्य को एक समतामूलक समाज बनाने के उद्देश्य से प्रेरित है। मूल कर्तव्य भी देश के प्रति नागरिकों के कर्तव्यों को प्रकट करते हैं। इसके माध्यम से व्यक्ति अपने कर्तव्यों का पालन करते हुए मूल अधिकारों को प्राप्त करते हैं क्योंकि एक के अधिकार दूसरे के कर्तव्य है।

1.5 बोध प्रश्न

1. भारतीय संविधान में विद्यमान समता के अधिकारों का उल्लेख कीजिए।
2. भारतीय संविधान में स्वतंत्रता के अधिकारों को किस प्रकार परिभाषित किया गया है?
3. संवैधानिक उपचारों पर प्रकाश डालिए।
4. मूल कर्तव्यों को स्पष्ट कीजिए।

1.6 संदर्भ एवं उपयोगी ग्रंथ

- काश्यप, सुभाष(1995). *हमारा संविधान*. नई दिल्ली: नेशनल बुक ट्रस्ट.
- मेल्लील्ली, प्रवीणकुमार(2017).*भारत का संविधान, वृत्तिक आचारनीति और मानव अधिकार*. नई दिल्ली: सेज पब्लिकेशन्स.
- https://hi.wikipedia.org/wiki/भारतीय_संविधान
- http://india.gov.in/hi/my-government/constitution-india/constitution-india-full-text#p4

ज्ञान शांति मैत्री

इकाई 2 राज्य के नीति निदेशक तत्व

इकाई की रूपरेखा

2.0 उद्देश्य
2.1 प्रस्तावना
2.2 राज्य के नीति निदेशक तत्व
2.3 सारांश
2.4 बोध प्रश्न
2.5 संदर्भ एवं उपयोगी ग्रंथ

2.0 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के पश्चात आप -

1) संविधान में विद्यमान राज्य के नीति निदेशक तत्वों की जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।
2) राज्य के नीति निदेशक तत्व की विशेषता एवं महत्ता को रेखांकित कर सकेंगे।

2.1 प्रस्तावना

संविधान जन हित में राज्य को संचालित करने का वैधानिक एवं नैतिक आधार प्रदान करता है। नागरिक होने के नाते हर व्यक्ति को मूल अधिकार प्राप्त होते हैं और व्यक्ति व समाज के विकास के लिए यथोचित परिवेश उपलब्ध कराना भी सरकार का दायित्व है। भारतीय संविधान विश्व के बेहतरीन संविधानों में से है। संविधान उन मार्गनिर्देशनों को तय करता है जिनके आधार पर विभिन्न नीतियां बनायी जाती है जो लोगों के कल्याण के लिए होती है। भारतीय संविधान में मौलिक अधिकारों (तृतीय खंड) एवं राज्य के नीति निर्देशक तत्वों (चतुर्थ खंड) में सामाजिक नीति का विस्तृत वर्णन किया गया है। मौलिक अधिकारों एवं कर्तव्यों की चर्चा हम पूर्व की इकाई में कर चुके हैं। इस इकाई में हम राज्य के नीति निदेशक तत्वों की चर्चा करेंगे।

2.2 राज्य के नीति निदेशक तत्व

संविधान के चतुर्थ खंड में अनुच्छेद 36 से 51 तक राज्य के नीति निदेशक तत्वों का उल्लेख किया गया है। यह सरकार को विशेष प्रकार की नीतियों को लागू करने के निर्देश हैं। जिनका पालन नीति निर्माण एवं क्रियान्वयन में करना चाहिए। इन नीति निदेशक तत्वों के जरिए संविधान निर्माताओं का उद्देश्य सामाजिक एवं आर्थिक समता एवं लक्ष्यों की प्राप्ति भी था। यह भारतीय संविधान को विलक्षणता प्रदान करते हैं। इन्हें सामाजिक बदलाव का सूचक भी कहा जा सकता है। वस्तुत: ये नैतिक उपदेश मात्र नहीं है बल्कि *निश्चयात्मक उपदेश*है तथा संविधान के मानव अधिकारों संबंधी उपबंधों के अभिन्न अंग माने जाते हैं(काश्यप :112)।इन तत्वों को लोकतांत्रिक कल्याणकारी राज्य की आदर्श स्थिति को प्राप्त करने का जरिया माना गया है। इन तत्वों के माध्यम से ऐसे सामाजिक बदलाव पर ध्यान केंद्रित किया गया है जिसके जरिए

कल्याणकारी राज्य की स्थापना, सामाजिक एवं आर्थिक शोषण एवं अन्याय की समाप्ति आदि कार्य सम्पन्न किए जा सकें।

नीति निदेशक तत्वों की विशेषताएं (मेल्लील्ली:35)

1. यह भारतीय सरकार अधिनियम, 1935 के 'निर्देशों के उपकरण' के समान हैं।
2. इनका उद्देश्य कल्याणकारी राज्य की स्थापना को बढ़ावा देना है। इसका लक्ष्य उद्देशिका में अभिव्यक्त मूल्यों स्वतंत्रता, समानता, बंधुत्व, न्याय, गरिमा आदि आदर्शों को नागरिकों को अनुभूत कराना है।
3. यह नीति निर्माण एवं क्रियान्वयन के समय राज्य के समक्ष आदर्शों की भांति हैं।
4. यह न्यायालय द्वारा लागू कराने योग्य नहीं हैं।

यह सही है कि यह न्यायालय द्वारा लागू कराने योग्य नहीं है परंतु
अनु 37 के अनुसार ये तत्व किसी न्यायालय मे लागू नही करवाये जा सकते यह तत्व वैधानिक न होकर राजनैतिक स्वरूप रखते है तथा मात्र नैतिक अधिकार रखते है। वे न तो कोई वैधानिक बाध्यता ही राज्य पे लागू करते है न जनता हेतु अधिकार कर्तव्य वे मात्र राज्य के लिये ऐसे सामान्य निर्देश है कि राज्य कुछ ऐसे कार्य करे जो राज्य की जनता के लिये लाभदायक हो। इन निर्देशों का पालन कार्यपालिका की नीति तथा विधायिका की विधियाँ से हो सकता है।

राज्य के नीति निर्देशक तत्व (चतुर्थ खंड)

अनुच्छेद	**विवरण**
36	परिभाषा
37	इस भाग में अंतर्विष्ट तत्वों का लागू होना
38	राज्य लोक कल्याण की अभिवृद्धि के लिए सामाजिक व्यवस्था बनाएगा
39	राज्य द्वारा अनुसरणीय कुछ नीति तत्व
39क	समान न्याय और नि:शुल्क विधिक सहायता
40	ग्राम पंचायतों का संगठन
41	कुछ दशाओं में काम, शिक्षा और लोक सहायता पाने का अधिकार
42	काम की न्यायसंगत और मानवोचित दशाओं का तथा प्रसूति सहायता का उपबंध
43	कर्मकारों के लिए निर्वाह मजदूरी आदि
43क	उद्योगों के प्रबंध में कार्मकारों का भाग लेना
44	नागरिकों के लिए एक समान नागरिक संहिता
45	बालकों के लिए नि:शुल्क और अनिवार्य शिक्षा का उपबंध

46	अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति तथा अन्य दुर्बल वर्गों के शिक्षा और अर्थ संबंधी हितों की अभिवृद्धि
47	पोषाहार स्तर और जीवन स्तर को ऊंचा करने तथा लोक स्वास्थ्य को सुधार करने का राज्य का कर्तव्य
48	कृषि और पशुपालन का संगठन
48क	पर्यावरण का संरक्षण और संवर्धन और वन तथा वन्य जीवों की रक्षा
49	राष्ट्रीय महत्व के संस्मारकों, स्थानों और वस्तुओं का संरक्षण देना
50	कार्यपालिका से न्यायपालिका का पृथक्करण
51	अंतरराष्ट्रीय शांति और सुरक्षा की अभिवृद्धि

36. परिभाषा--इस भाग में, जब तक कि संदर्भ से अन्यथा अपेक्षित न हो, "राज्य" का वही अर्थ है जो भाग 3 में है।

37. इस भाग में अंतर्विष्ट तत्त्वों का लागू होना--इस भाग में अंतर्विष्ट उपबंध किसी न्यायालय द्वारा प्रवर्तनीय नहीं होंगे किंतु फिर भी इनमें अधिकथित तत्त्व देश के शासन में मूलभूत हैं और विधि बनाने में इन तत्त्वों को लागू करना राज्य का कर्तव्य होगा।

38. राज्य लोक कल्याण की अभिवृद्धि के लिए सामाजिक व्यवस्था बनाएगा— (1)] राज्य ऐसी सामाजिक व्यवस्था की, जिसमें सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक न्याय राष्ट्रीय जीवन की सभी संस्थाओं को अनुप्राणित करे, भरसक प्रभावी रूप में स्थापना और संरक्षण करके लोक कल्याण की अभिवृद्धि का प्रयास करेगा। (संविधान (चवालीसवाँ संशोधन) अधिनियम, 1978 की धारा 9 द्वारा (20-6-1979 से) अनुच्छेद 38 को उसके खंड (1) के रूप में पुनःसंख्यांकित किया गया।)

[(2) राज्य, विशिष्टतया, आय की असमानताओं को कम करने का प्रयास करेगा और न केवल व्यष्टियों के बीच बल्कि विभिन्न क्षेत्रों में रहने वाले और विभिन्न व्यवसायों में लगे हुए लोगों के समूहों के बीच भी प्रतिष्ठा, सुविधाओं और अवसरों की असमानता समाप्त करने का प्रयास करेगा।] संविधान (चवालीसवाँ संशोधन) अधिनियम, 1978 की धारा 9 द्वारा (20-6-1979 से) अंतःस्थापित।

39. **राज्य द्वारा अनुसरणीय कुछ नीति तत्त्व-राज्य अपनी नीति का, विशिष्टतया, इस प्रकार संचालन करेगा कि सुनिश्चित रूप से**--

(क) पुरुष और स्त्री सभी नागरिकों को समान रूप से जीविका के पर्याप्त साधन प्राप्त करने का अधिकार हो;
(ख) समुदाय के भौतिक संसाधनों का स्वामित्व और नियंत्रण इस प्रकार बंटा हो जिससे सामूहिक हित का सर्वोत्तम रूप से साधन हो;
(ग) आर्थिक व्यवस्था इस प्रकार चले जिससे धन और उत्पादन-साधनों का सर्वसाधारण के लिए अहितकारी संकेंद्रण न हो;

(घ) पुरुषों और स्त्रियों दोनों का समान कार्य के लिए समान वेतन हो;
(ङ) पुरुष और स्त्री कर्मकारों के स्वास्नय और शक्ति का तथा बालकों की सुकुमार अवस्था का दुरुपयोग न हो और आर्थिक आवश्यकता से विवश होकर नागरिकों को ऐसे रोजगारों में न जाना पड़े जो उनकी आयु या शक्ति के अनुकूल न हों;
(च) बालकों को स्वतंत्र और गरिमामय वातावरण में स्वस्थ विकास के अवसर और सुविधाएँ दी जाएँ और बालकों और अल्पवय व्यक्तियों की शोषण से तथा नैतिक और आर्थिक परित्याग से रक्षा की जाए।]
(संविधान (बयालीसवाँ संशोधन) अधिनियम, 1976 की धारा 7 द्वारा (3-1-1977 से) खंड (च) के स्थान पर प्रतिस्थापित।)

39क. समान न्याय और निःशुल्क विधिक सहायता--राज्य यह सुनिश्चित करेगा कि विधिक तंत्र इस प्रकार काम करे कि समान अवसर के आधार पर न्याय सुलभ हो और वह, विशिष्टतया, यह सुनिश्चित करने के लिए कि आर्थिक या किसी अन्य निर्योषयता के कारण कोई नागरिक न्याय प्राप्त करने के अवसर से वंचित न रह जाए, उपयुक्त विधान या स्कीम द्वारा या किसी अन्य रीति से निःशुल्क विधिक सहायता की व्यवस्था करेगा। (संविधान (बयालीसवाँ संशोधन) अधिनियम, 1976 की धारा 8 द्वारा (3-1-1977 से) अंतःस्थापित)

40. ग्राम पंचायतों का संगठन--राज्य ग्राम पंचायतों का संगठन करने के लिए कदम उठाएगा और उनको ऐसी शक्तियां और प्राधिकार प्रदान करेगा जो उन्हें स्वायत्त शासन की इकाइयों के रूप में कार्य करने योषय बनाने के लिए आवश्यक हों।

41. कुछ दशाओं में काम, शिक्षा और लोक सहायता पाने का अधिकार -- राज्य अपनी आर्थिक सामनर्य और विकास की सीमाओं के भीतर, काम पाने के, शिक्षा पाने के और बेकारी, बुढ़ापा, बीमारी और निःशक्तता तथा अन्य अनर्ह अभाव की दशाओं में लोक सहायता पाने के अधिकार को प्राप्त कराने का प्रभावी उपबंध करेगा।

42. काम की न्यायसंगत और मानवोचित दशाओं का तथा प्रसूति सहायता का उपबंध--राज्य काम की न्यायसंगत और मानवोचित दशाओं को सुनिश्चित करने के लिए और प्रसूति सहायता के लिए उपबंध करेगा।

43. कर्मकारों के लिए निर्वाह मजदूरी आदि--राज्य, उपयुक्त विधान या आर्थिक संगठन द्वारा या किसी अन्य रीति से कृषि के, उद्योग के या अन्य प्रकार के सभी कर्मकारों को काम, निर्वाह मजदूरी, शिष्ट जीवनस्तर और अवकाश का संपूर्ण उपभोग सुनिश्चित करने वाली काम की दशाएं तथा सामाजिक और सांस्कृतिक अवसर प्राप्त कराने का प्रयास करेगा और विशिष्टतया ग्रामों में कुटीर उद्योगों को वैयक्तिक या सहकारी आधार पर बढ़ाने का प्रयास करेगा।

43क. उद्योगों के प्रबंध में कर्मकारों का भाग लेना--राज्य किसी उद्योग में लगे हुए उपक्रमों, स्थापनों या अन्य संगठनों के प्रबंध में कर्मकारों का भाग लेना सुनिश्चित करने के लिए उपयुक्त विधान द्वारा या किसी अन्य रीति से कदम उठाएगा।] (संविधान (बयालीसवाँ संशोधन) अधिनियम, 1976 की धारा 9 द्वारा (3-1-1977 से) अंतःस्थापित)

ज्ञान शांति मैत्री

44. नागरिकों के लिए एक समान सिविल संहिता--राज्य, भारत के समस्त राज्यक्षेत्र में नागरिकों के लिए एक समान सिविल संहिता प्राप्त कराने का प्रयास करेगा।

45. बालकों के लिए निःशुल्क और अनिवार्य शिक्षा का उपबंध--राज्य, इस संविधान के प्रारंभ से दस वर्ष की अवधि के भीतर सभी बालकों को चौदह वर्ष की आयु पूरी करने तक, निःशुल्क और ओंनवार्य शिक्षा देने के लिए उपबंध करने का प्रयास करेगा। (संविधान (छियासीवाँ संशोधन) अधिनियम, 2002 की धारा 3 के प्रवर्तित होने पर अनुच्छेद 45 के स्थान पर निम्नलिखित प्रतिस्थापित किया जाएगा: "45. छह वर्ष से कम आयु के बालकों के लिए प्रारंभिक बाल्यावस्था देख-रेख और शिक्षा का उपबंध--राज्य सभी बालकों के लिए छह वर्ष की आयु पूरी करने तक, प्रारंभिक बाल्यावस्था देख-रेख और शिक्षा देने के लिए उपबंध करने का प्रयास करेगा।")

46. अनुसूचित जातियों, अनुसूचित जनजातियों और अन्य दुर्बल वर्गों के शिक्षा और अर्थ संबंधी हितों की अभिवृद्धि -- राज्य, जनता के दुर्बल वर्गों के, विशिष्टतया, अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के शिक्षा और अर्थ संबंधी हितों की विशेष सावधानी से अभिवृद्धि करेगा और सामाजिक अन्याय और सभी प्रकार के शोषण से उसकी संरक्षा करेगा।

47. पोषाहार स्तर और जीवन स्तर को ऊँचा करने तथा लोक स्वास्नय का सुधार करने का राज्य का कर्तव्य--राज्य, अपने लोगों के पोषाहार स्तर और जीवन स्तर को ऊँचा करने और लोक स्वास्नय के सुधार को अपने प्राथमिक कर्तव्यों में मानेगा और राज्य, विशिष्टतया, मादक पेयों और स्वास्नय के लिए हानिकर ओषधियों के, औषधीय प्रयोजनों से भिन्न, उपभोग का प्रतिषेध करने का प्रयास करेगा।

48. कृषि और पशुपालन का संगठन--राज्य, कृषि और पशुपालन को आधुनिक और वैज्ञानिक प्रणालियों से संगठित करने का प्रयास करेगा और विशिष्टतया गायों और बछड़ों तथा अन्य दुधारू और वाहक पशुओं की नस्लों के परिरक्षण और सुधार के लिए और उनके वध का प्रतिषेध करने के लिए कदम उठाएगा।

48क. पर्यावरण का संरक्षण तथा संवर्धन और वन तथा वन्य जीवों की रक्षा--राज्य, देश के पर्यावरण के संरक्षण तथा संवर्धन का और वन तथा वन्य जीवों की रक्षा करने का प्रयास करेगा।] (संविधान (बयालीसवाँ संशोधन) अधिनियम, 1976 की धारा 10 द्वारा (3-1-1977 से) अंतःस्थापित।)

49. राष्ट्रीय महत्व के संस्मारकों, स्थानों और वस्तुओं का संरक्षण— [संसद द्वारा बनाई गई विधि द्वारा या उसके अधीन] राष्ट्रीय महत्व वाले [घोषित किए गए] कलात्मक या ऐतिहासिक अभिरुचि वाले प्रत्येक संस्मारक या स्थान या वस्तु का, यथास्थिति, लुंठन, विरूपण, विनाश, अपसारण, व्ययन या निर्यात से संरक्षण करना राज्य की बाध्यता होगी।(संविधान (सातवाँ संशोधन) अधिनियम, 1956 की धारा 27 द्वारा "संसद द्वारा विधि द्वारा घोषित" के स्थान पर प्रतिस्थापित)

50. कार्यपालिका से न्यायपालिका का पृथक्करण--राज्य की लोक सेवाओं में, न्यायपालिका को कार्यपालिका से पृथक् करने के लिए राज्य कदम उठाएगा।

51. अंतरराष्ट्रीय शांति और सुरक्षा की अभिवृद्धि --राज्य,

(क) अंतरराष्ट्रीय शांति और सुरक्षा की अभिवृद्धि का,

(ख) राष्ट्रों के बीच न्यायसंगत और सम्मानपूर्ण संबंधों को बनाए रखने का,

(ग) संगठित लोगों के एक दूसरे से व्यवहारों में अंतरराष्ट्रीय विधि और संधि-बाध्यताओं के प्रति आदर बढ़ाने का, और
(घ) अंतरराष्ट्रीय विवादों के माध्य स्थम् द्वारा निपटारे के लिए प्रोत्साहन देने का,
प्रयास करेगा।

राज्य के नीति निदेशक तत्वों का महत्व :

- यह प्रावधान समाज में सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक, सांस्कृतिक न्याय एवं समानता हेतु मार्ग प्रशस्त करते हैं।
- यह प्रावधान मानवीय गरिमा और स्वस्थ पर्यावरण को सुनिश्चित करने का आधार प्रदान करते हैं|
- यह कानून की व्याख्या करने में मददगार होते हैं|
- सरकार को नीति निर्माण एवं क्रियान्वयन में एक नैतिक और आदर्श प्रारूप उपलब्ध कराते हैं|
- यह प्रावधान अंतर्राष्ट्रीय शांति व सुरक्षा को बढ़ावा देने में राष्ट्र की भूमिका को सुनिश्चित करने में मार्ग निर्देशन करते हैं|

2.3 सारांश

भारतीय संविधान ने एक बहुलतावादी समाज में सामाजिक न्याय को प्राप्त करने हेतु विभिन्न प्रावधान उपलब्ध कराएं हैं। संविधान ने व्यक्तिगत स्वतंत्रता को महत्ता प्रदान करते हुए मौलिक अधिकारों में सभी नागरिकों को बिना किसी भेदभाव के समान अधिकार प्रदान किए हैं। अपने नागरिकों में किसी आधार पर किसी प्रकार का भेदभाव स्वीकार नहीं किया है। राज्य की दृष्टि में सभी नागरिक और उनके हित समान है । ऐसा करते हुए भी संविधान ने राज्य को इस बात के लिए मार्ग प्रदान किया है कि समाज के वंचित तबके के लिए वह विशिष्ट व्यवस्थाएं कर सकता है। यह समानता का उल्लघंन नहीं अपितु वंचित तबकों का सशक्तिकरण कर उन्हें समाज में उनका यथोचित स्थान प्रदान करना है। संविधान नीति निर्देशक तत्वों के माध्यम से राज्यों को यह मार्ग प्रदान करता है कि वे इस प्रकारकी नीतियां बनाएं जिनसे सभी का कल्याण सुनिश्चित हो सके। ऐसा करते हुए समाज के वंचित एवं हाशिए के वर्ग का समुचित ध्यान रखा जाए।

2.4 बोध प्रश्न

1 राज्य के नीति निर्देशक तत्वों को बताइए ।
2. राज्य के नीति निर्देशक तत्वों की आवश्यकता पर प्रकाश डालिए।
3. निम्नलिखित पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए-
    1. अनुच्छेद 39
    2. अनुच्छेद 45
    3. अनुच्छेद 47
    4. अनुच्छेद 39 क

2.5 संदर्भ एवं उपयोगी ग्रंथ –

- काश्यप, सुभाष(1995).*हमारा संविधान*. नई दिल्ली: नेशनल बुक ट्रस्ट.
- मेल्लील्ली, प्रवीणकुमार(2017).*भारत का संविधान, वृत्तिक आचारनीति और मानव अधिकार*. नई दिल्ली: सेज पब्लिकेशन्स.
- https://hi.wikipedia.org/wiki/भारतीय_संविधान
- http://india.gov.in/hi/my-government/constitution-india/constitution-india-full-text#p4

इकाई -3 संविधान संशोधन की प्रक्रिया

3.0 उद्देश्य
3.1 प्रस्तावना
3.2 संविधान संशोधन की प्रक्रिया
3.3 सारांश
3.4 बोध प्रश्न
3.5 संदर्भ एवं उपयोगी ग्रंथ

3.0 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के उपरांत आप –

- भारतीय संविधान संशोधन की प्रक्रिया से परिचित हो सकेंगे।

3.1 प्रस्तावना

कोई भी संविधान अपनी वर्तमान सीमाओं एवं परिस्थितियों से बंधा हुआ होता है। लेकिन वह भविष्य की आकांक्षाओं एवं दूरदर्शिता अपनाते हुए कुछ प्रावधान भी करता है। परंतु यह संभव नहीं है कि भविष्य की हर घटना और परिस्थिति का पूर्व अनुमान कर उसके अनुसार प्रावधान कर सके। इसलिए संविधान में संशोधन, परिवर्तन, परिवर्धन करना आवश्यक एवं अनिवार्य हो जाता है।
इंग्लैंड जैसे देश में संविधान में संशोधन की प्रक्रिया सामान्य नीतिनिर्माण की प्रक्रिया के समान ही है। जबकि अमेरिका जैसे देश में संविधान में संशोधन की प्रक्रिया काफी जटिल है। भारतीय संविधान निर्माताओं ने इन दोनों ही प्रक्रियाओं को अपनाया है। जिसमें कुछ संविधान संशोधन आसानी से हो सकते हैं और कुछ संविधान संशोधन करने की प्रक्रिया काफी जटिल है।

3.2 संविधान संशोधन की प्रक्रिया

संविधान एक जीवंत एवं वर्धनशील दस्तावेज होता है। नई परिस्थितियों और समस्याओं के अनुसार उसमें परिवर्तन लाजमी हो जाता है। यदि ऐसा न हो तो देश की जनता के लिए संविधान की गरिमा कम होती है। अतएव तत्कालिक आवश्यकताओं और दीर्घकालीन आदर्शों की प्राप्ति के लिए इसमें संशोधन जरूरी हो जाता है। संविधान का विकास संवैधानिक परम्पराओं, न्यायालय द्वारा की जाने वाली व्याख्याओं और संविधान संशोधन इन तीनों के जरिए होता है।
भारतीय संविधान विश्व का सर्वाधिक विशाल एवं लिखित संविधान है, किन्तु इसकी विशेषता यह है की इसमें नम्यता और अम्नाम्यता दोनों का अद्भुत् मिश्रण है। भारत का संविधान लिखित होते हुए भी अनम्य या कठोर नहीं है।

संविधान के भाग -20 के अनुच्छेद 368 में संविधान संशोधन से संबंधित प्रक्रिया का उल्लेख किया गया है। संविधान में संशोधन की तीन पद्धतियां हैं -

1. साधारण बहुमत
2. दो तिहाई बहुमत द्वारा
3. विशेष बहुमत तथा राज्यों का अनुसमर्थन।

साधारण बहुमत

संविधान में कतिपय अंश ऐसे हैं जिनको संसद केवल साधारण बहुमत से परिवर्तित कर सकती है। ऐसे उपबंध निम्नलिखित हैं -

1. अनुच्छेद 2, 3 और 4 जो संसद को कानून द्वारा यह अधिकार दिलाते हैं कि वह नए राज्यों को प्रविष्ट कर सके, सीमा परिवर्तन द्वारा नए राज्यों का निर्माण कर सकें और तदनुसार प्रथम एवं चतुर्थ अनुसूची में परिवर्तन कर सकें।
2. अनुच्छेद 73(2) जो संसद की किसी अन्य व्यवस्था के होने तक राज्य में कुछ सुनिश्चित शक्तियां निहित करता है।
3. अनुच्छेद 100(3) जिसमें संसद की नई व्यवस्था के होने तक संसदीय गणपूर्ति का प्रावधान है।
4. अनुच्छेद 75, 97, 125, 148, 165(5) तथा 221(2) जो द्वितीय अनुसूची में परिवर्तन की अनुमति देते है।
5. अनुच्छेद 105(3) संसद द्वारा परिभाषित किए जाने पर संसदीय विशेषाधिकारों की व्यवस्था करता है।
6. अनुच्छेद 106 जो संसद द्वारा पारित किए जाने पर संसद सदस्यों के वेतन एवं भत्तों की व्यवस्था करता है।
7. अनुच्छेद 118(2) जो संसद के दोनों सदनों द्वारा स्वीकृत किए जाने पर प्रक्रिया से संबंधित विधि की व्यवस्था करता है।
8. अनुच्छेद 120(3) जो संसद द्वारा किसी नयी व्यवस्था के न किए जाने पर 15 वर्षो के उपरान्त अंग्रेजी को संसदीय भाषा के रूप में छोडने की व्यवस्था करता है।
9. अनुच्छेद 124(1) जिसमें यह व्यवस्था है कि संसद द्वारा किसी व्यवस्था के न होने तक उच्चतम न्यायालय में सात न्यायाधीश होंगे।
10. अनुच्छेद 133(3) जो संसद द्वारा नई व्यवस्था न किए जाने तक उच्च न्यायालय के एक न्यायाधीश के द्वारा उच्चतम न्यायालय को भेजी गई अपील को रोकता है।
11. अनुच्छेद 135 जो संसद द्वारा किसी अन्य व्यवस्था को न किए जाने तक उच्चतम न्यायालय के लिए एक सुनिश्चित अधिकार खेत्र नियत करता है।
12. अनुच्छेद 169(1) जो कुछ शर्तो के साथ विधान परिषदों को भंग करने की व्यवस्था करता है।

ज्ञान शांति मैत्री

दो-तिहाई बहुमत द्वारा

संविधान की इस संशोधन प्रक्रिया में प्रत्येक सदन में सदस्यों की कुल संख्या का बहुमत तथा उस सदन में उपस्थित और मतदान करने वाले सदस्यों के कम से कम दो-तिहाई बहुमत की आवश्यकता होती है। संशोधन का प्रस्ताव किसी भी सदन में रखा जा सकता है किंतु पारित उसे तब मन जाएगा, जब संसद के दोनों सदनों द्वारा ⅔ बहुमत से उसका अनुमोदन कर दिया जाये। इस प्रक्रिया में संसद के दोनों सदनों के संशोधन विधेयक का अलग-अलग दो-तिहाई बहुमत से पारित होना आवश्यक होता है।

इस श्रेणी में आने वाले अनुच्छेदों की सूची काफी विस्तृत है। वास्तव में प्रथम श्रेणी और तृतीय श्रेणी में आने वाले अनुच्छेदों को छोड़कर सभी अनुच्छेद ऐसे हैं, जिन्हें संसद दो-तिहाई बहुमत द्वारा ही बदल सकती है।

विशेष बहुमत और राज्यों का अनुसमर्थन

संशोधन की इस प्रक्रिया में संविधान के कुछ ऐसे अनुच्छेद आते हैं, जिन्हें संशोधित करना अत्यंत कठिन होता है। इन अनुच्छेदों में संशोधन करने के लिए संसद के दो-तिहाई बहुमत के साथ-साथ भारत के कम से कम आधे राज्यों के विधानमंडलों की स्वीकृति आवश्यक होती है। इस श्रेणी में संविधान के निम्नलिखित उपबंध आते हैं-

1. अनुच्छेद 54- राष्ट्रपति का निर्वाचन
2. अनुच्छेद 55- राष्ट्रपति के निर्वाचन की विधि
3. अनुच्छेद 73–संघ की कार्यपालिका शक्ति का विस्तार
4. अनुच्छेद 162- राज्यों की कार्यपालिका शक्ति का विस्तार
5. अनुच्छेद 241- केंद्र शासित क्षेत्रों के लिए उच्च न्यायालय
6. संघीय न्यायपालिका (भाग-5 अध्याय-4)
7. राज्यों के लिए उच्च न्यायालय (भाग-6 अध्याय-5)
8. संघ-राज्य-संबंध (विधायी) (भाग-11 अध्याय-1)
9. सातवीं अनुसूची का कोई भी विषय
10. संसद में राज्यों का प्रतिनिधित्व
11. संविधान-संशोधन से संबंधित अनुच्छेद-368

जिन उपबंधों का सम्बन्ध केंद्र और राज्यों दोनों के ही अधिकार क्षेत्रों से है, उनमें संशोधन न तो केंद्र कर सकता है और न ही राज्य। इस प्रकार की संशोधन प्रक्रिया में केंद्र और राज्य दोनों का हाथ होने के कारण यह प्रक्रिया अत्यंत जटिल मानी जाती है।

संयुक्त बैठक का प्रावधान नहीं

अनुच्छेद 368 के अधीन रहते हुए संविधान संशोधन विधेयक उसी प्रक्रिया के पारित किए जाते हैं। किन्तु यदि संविधान संशोधन विधेयक पर दोनों सदनों में विरोध है तो गतिरोध दुर करने हेतु संयूक्त बैठक का कोई प्रावधान नहीं है।

ज्ञान शांति मैत्री

राष्ट्रपति संशोधन विधेयक पर अनुमति देने के लिए बाध्य है

अनुच्छेद 111 के अनुसार जब साधारण विधेयक राष्ट्रपति की अनुमति के लिए भेजे जाते हैं तो वह अनुमति न देकर उसे सदनों को पुनर्विचार करने के लिए लौटा सकता है किन्तु अनुच्छेद 368 के अन्तर्गत राष्ट्रपति संविधान संशोधन विधेयक पर अनुमति देने के लिए बाध्य है। न ही विधेयक प्रस्तुत करने से पूर्व राष्ट्रपति की पूर्वानुमति की आवश्यकता है।

केशवानन्द भारती बनाम केरल राज्य के ऐतिहासिक मामलों में उच्चतम न्यायालय ने 7:6 से दिए गए निर्णय में यह स्पष्ट किया कि संविधान के अनुच्छेद 368 में संसद को जो संशोधन की शक्ति प्राप्त है, वह असीमित नहीं है। संसद संविधान संशोधन शक्ति द्वारा संविधान के आधारभूत ढांचे को नष्ट नहीं कर सकती है। किन्तु आधारभूत ढांचा क्या है, इसका निर्धारण न्यायालय आवश्यकता अनुरूप करेगा।

समय-समय पर विभिन्न न्यायाधीशों ने संविधान के मूल लक्षणों को निम्नानुसार सारणीबद्ध करने का प्रयास किया :

- संविधान की सर्वोच्चता
- गणतंत्रात्मक तथा लोकतंत्रात्मक शासन प्रणाली
- संविधान का पंथनिरपेक्ष स्वरूप
- शक्तियों का पृथक्करण
- संविधान का संघात्मक स्वरूप
- भारत की संप्रभुता एवं एकता

हालांकि संविधान के मूल ढाँचे को लेकर मतैक्य नहीं है परंतु इतना अवश्य कहा जा सकता है कि संविधान के कुछ प्रावधान ऐसे हैं जिन्हें मनमाने ढ़ंग से परिवर्तित नहीं किया जा सकता है।

ज्ञान शांति मैत्री

प्रमुख संविधान संशोधन (मेल्लीपल्ली :132-134)

प्रथम संविधान संशोधन जून, 1951 के अनुसार : राज्यों के भूमि सुधार कानूनों को नवीं अनुसूची में रखकर न्यायालयों के अधिकार क्षेत्र से बाहर कर दिया।

सातवां(1956) : राज्यों का पुनर्गठन।

बाहरवां(1962) : पुर्तगाली अधिपत्य वाले गोआ, दमन तथा दीव को भारत का अंग बना लिया गया।

चौदहवां(1962) : फ्रांसीसी अधिपत्य वाले पांडिचेरी को भारत का अंग बना लिया गया।

छब्बीसवां(1971) : राजाओं के प्रिवीपर्स तथा विशेषाधिकार समाप्त।

बयालिसवां(1976) : इस संविधान संशोधन को 'मिनी संविधान' भी कहा जाता है। भारतीय संविधान में –

- **समाजवादी**
- **पंथनिरपेक्ष**
- **अखंडता**

शब्द जोडे गए। भाग 4 अ और अनुच्छेद 51 अ द्वारा मूल कर्तव्यों को जोड़ा गया। मंत्रिमंडल की सलाह हेतु राष्ट्रपति का बाध्यकरण किया गया। तीन नए नीति निदेशक तत्व शामिल किए गए। प्रशासनिक न्यायाधिकरण की स्थापना हेतु प्रावधान किया गया।

चौंवालीसवां(1976) : इसमें स्पष्ट किया गया कि आपातकाल के दौरान भी अनुच्छेद 20 व 21 (मूल अधिकार) को निलंबित नहीं किया जा सकता है। राष्ट्रपति केवल मंत्रिमंडल की लिखित सिफारिश पर ही राष्ट्रीय आपातकाल घोषित कर सकता है। 'आंतरिक अशांति' शब्द को सशस्त्र विद्रोह से बदल दिया गया। सम्पति के मौलिक अधिकार को समाप्त किया।

बावनवां(1985) : दल: बदल विरोधी प्रावधान(दसवीं अनुसूची)।

अट्ठावनवां(1987) : भारतीय संविधान का हिन्दी में प्राधिकृत रूप के लिए प्रावधान।

इकसठवां(1989) : मताधिकार की आयु 21 वर्ष से घटाकर 18 वर्ष की गई।

पैंसठवां(1990) : अनुसूचित जाति और जनजाति आयोग को संवैधानिक दर्जा प्रदान किया गया।

उन्हतरवां(1991) : दिल्ली का नाम राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र किया गया तथा विधान सभा की स्थापना की गई।

तिहतरवां(1992) : इस अधिनियम में पंचायती राज संस्थाओं/ग्रामीण स्वशासन संस्थाओं को संवैधानिक दर्जा प्रदान किया तथा संविधान में नया भाग IX और एक नई अनुसूची पंचायती राज(ग्यारहवीं अनुसूची) जोड़ी।

चैहतरवां(1992) : इस अधिनियम में शहरी स्थानीय संस्थाओं को संवैधानिक दर्जा प्रदान किया तथा संविधान में नया भाग IX और एक नई अनुसूची नगर निकाय सम्बन्धी(बाहरवीं अनुसूची) जोड़ी।

उन्नासीवां(1999) : अनुसूचित जाति/जनजाति और एंग्लों इण्डियन के लिए लोक सभा और विधान सभाओं में सीटों का आरक्षण 2010 ई. तक बढ़ाया।

छियासीवां(2002) : यह अधिनियम शिक्षा क्षेत्र में बहुत महत्वपूर्ण संशोधन है। इसके महत्वपूर्ण प्रावधान हैं-

- अनुच्छेद 21-क को जोड़ा गया जिसके अनुसार बच्चे/बच्चियों को 'शिक्षा का अधिकार' प्रदान करते हुए 6-14 वर्ष की आयु के सभी बच्चे/बच्चियों के लिए प्राथमिक शिक्षा को मूल अधिकार बना दिया गया है।
- 6-14 वर्ष की आयु के सभी बच्चे/बच्चियों को 'मुफ्त एवं अनिवार्य' शिक्षा प्रदान करने के निर्देश राज्यों को दिए गए हैं।
- नया मूल कर्तव्य जोडा गया जिसमें सभी भारतीय अभिभावकों/संरक्षकों को 6-14 वर्ष की आयु के सभी बच्चे/बच्चियों को प्राथमिक शिक्षा का अवसर प्रदान करना, मूल कर्तव्य बनाया गया है।

नवासीवां(2003) : अनुसूचित जातियों के लिए पृथक राष्ट्रीय आयोग के गठन का प्रावधान।

इक्यानवेवां(2003) : दल बदल में केवल सम्पूर्ण दल के विलय को मान्यता। केन्द्र में लोक सभा तथा राज्य में विधान सभा की कुल सदस्या संख्या के 15 प्रतिशत से अधिक मंत्री नहीं हो सकते।

बानवेवां(2003) : आठवीं अनुसूची में डोगरी, मैथिली, बोडो और संथाली भाषाओं का समावेश। कुल 22 भाषाएं।

तिरानवें वां(2005) : निजी शिक्षण संस्थाओं में आरक्षण।

चैरानवे वां(2006) : जनजातियां हेतु पृथक मंत्रालय(मध्य प्रदेश, छतीसगढ़, उड़ीसा व झारखंड)।

पिच्यानवें वां संशोधन(2009) : लोकसभा व विधानसभाओं में एस. सी. व एस. टी. व आंग्ल भारतीयों के लिए आरक्षरण 2020 तक वृद्धि।

3.3 सारांश

इस इकाई में हमने देखा कि किसी भी देश का संविधान एक जीवंत दस्तावेज होता है। समय एवं परिस्थितियों के अनुसार उसमें परिवर्तन अवश्यम्भावी हो जाता है। उसे जनता के हितों के अनुसार बदलाव से गुजरना होता है। अतएव हर संविधान में संशोधन का प्रावधान किया जाता है। भारतीय संविधान निर्माताओं ने भी भारतीय संविधान में संशोधन की प्रक्रिया का उल्लेख किया है। नए आजाद भारत एवं विविधतापूर्ण संस्कृति वाले राष्ट्र के रूप में परिस्थितियों को भांपते हुए उन्होंने संशोधन की प्रक्रिया में भी मध्यम मार्ग अपनाया। कुछ प्रावधानों को सामान्य बहुमत, कुछ प्रावधानों को संसद के विशिष्ट बहुमत और कुछ प्रावधानों को संसद के दो तिहाई बहुमत सहित राज्य की विधानसभाओं की सहमति के साथ जोडा। इस प्रकार उन्होंने नम्यता और कठोरता दोनों ही गुणों का समावेश संविधान संशोधन प्रक्रिया में किया।

भारतीय संविधान में हुए संशोधन यह स्पष्ट करते हैं कि संशोधन प्रक्रिया के माध्यम से भारत ने अपने आप को परिस्थितियों के अनुकूल बनाया है। आपातकाल के अवसर को छोड कर भारतीय संविधान में बदलाव इसकी प्रकृति के अनुरूप ही रहे हैं। भारतीय जनता ने भी इन संशोधनों की अपनी स्वीकृत प्रदान की है।

3.4 बोध प्रश्न

1. किसी भी संविधान में संशोधन की आवश्यकता क्यों होती है?
2. भारतीय संविधान में संशोधन की क्या प्रक्रिया अपनाई गई है?
3. भारतीय संविधान में प्रमुख संशोधनों का उल्लेख कीजिए।

ज्ञान शांति मैत्री

3.5 संदर्भ एवं उपयोगी ग्रंथ

- काश्यप, सुभाष(1995).*हमारा संविधान*. नई दिल्ली: नेशनल बुक ट्रस्ट.
- मेल्लीलल्ली, प्रवीणकुमार(2017).*भारत का संविधान, वृत्तिक आचारनीति और मानव अधिकार*. नई दिल्ली: सेज पब्लिकेशन्स.
- https://hi.wikipedia.org/wiki/भारतीय_संविधान
- http://india.gov.in/hi/my-government/constitution-india/constitution-india-full-text#p4

इकाई 4 संविधान संबंधी समसामयिक विमर्श

इकाई रूपरेखा

4.0 उद्देश्य
4.1 प्रस्तावना
4.2 भारतीय संविधान संबंधी समसामयिक विमर्श
4.3 सारांश
4.4 बोध प्रश्न
4.5 संदर्भ एवं उपयोगी ग्रंथ

4.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन उपरांत आप -

- भारतीय संविधान संबंधी समसामयिक विमर्श से परिचित हो सकेंगे।

4.1 प्रस्तावना

भारत का स्वतंत्रता संग्राम जिन मूल्यों के आधार पर तथा जिस समाज के निर्माण के लिए लड़ा गया, संविधान के निर्माण समय उन्हें मूर्त रूप प्रदान किया गया। भारत जैसे विशाल और विविधतापूर्ण राष्ट्र के लिए संविधान निर्माण बहुत कठिन कार्य रहा। फिर भी संविधान निर्माताओं ने स्वतंत्रता,समानता और बंधुत्व के साथ सामाजिक न्याय और व्यक्ति की गरिमा को भी बराबर का स्थान दिया। उन्होंने ऐसी व्यवस्था बनाने का प्रयास किया जो भारतीय जनता के जीवन को बेहतर बना सके।

लोकतांत्रिक व्यवस्था के माध्यम से जनता को संप्रभु बनाया गया। मूल अधिकारों के जरिए व्यक्ति को गरिमा प्रदान की गई। केंद्र एवं राज्यों के बीच संतुलन बनाया गया। कार्यपालिका, व्यवस्थापिका एवं न्यायपालिका के बीच संतुलन स्थापित किया गया। जहां भारत के आसपास के सभी राष्ट्रों में लोकतांत्रिक व्यवस्था लगभग धूमिल सी हो चुकी है, वहीं भारत में लोकतांत्रिक व्यवस्था आज भी मजबूती से अपने आपको बनाए रखे हुए है। इसमें भारतीय संविधान की महत्वपूर्ण भूमिका रही है।

4.2 भारतीय संविधान संबंधी समसामयिक विमर्श

संविधान निर्माण के समय निर्माताओं ने विश्व के संविधानों के अध्ययन कर जो भी सर्वोत्तम भारतीय परिदृश्य के लिए हो सकता था, वह प्रावधान संविधान में शामिल किया। वर्तमान में लगभग 100

संविधान संशोधन हो चुके हैं। यह स्पष्ट करता है कि भारतीय संविधान में यह सामर्थ्य मौजूद है कि वह अपने को समकालीनता के अनुसार ढाल सके। आज भारत विश्व में तेजी से उभरती हुई आर्थिक महाशक्ति है और विश्व का सबसे बडा लोकतंत्र है। उसकी स्थिरता आज भी अध्ययन का विषय बनी हुई है। इसके पीछे सबसे महत्वपूर्ण तत्व भारतीय संविधान ही है।

संविधान से संबंधित कुछ महत्वपूर्ण समीक्षाओं/परिवर्तनों निम्नानुसार बताया जा सकता है-

- वर्ष 1951 में नवीं अनुसूची को जोडा गया सामने आई थी। इसका उद्देश्य सरकार द्वारा चुने हुए कानूनों को न्यायिक पुनर्विचार के दायरे से बाहर रखना था।
- वर्ष 1967 में 24वें संविधान संशोधन की घोषणा हुई थी। यह समीक्षा केशवानन्द भारती वाद में सर्वोच्च न्यायालय के आधारभूत संरचना सिद्धांत के साथ समाप्त हुई थी।
- वर्ष 1976 में स्वर्ण सिंह समिति ने संविधान की समीक्षा उपरांत अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत की जिसका परिणाम 42वें संविधान संशोधन के रूप में सामने आया था। यह संशोधन इतने मूलभूत और व्यापक प्रभाव वाले थे इस कारण इस संविधान संशोधन को लघु संविधान की संज्ञा भी दी गई।
- 1977 में जनता पार्टी सरकार ने 43वें और 44वें संशोधन किए। जिनके आधार पर 42वें संविधान संशोधन द्वारा भारतीय संविधान के विरूद्ध जाने वाले तत्वों को हटाया गया। संविधान की मूल भावना को स्थापित किया गया।

संविधान की लगभग 68 वर्षों की यात्रा में कई बार ऐसा प्रतीत होता है कि संविधान भारतीय परिदृश्य में सफल नहीं हो पाया है। अंग्रेजीयत से प्रभावित होने के कारण अभी भी लोकतंत्र में लोक पीछे और तंत्र हावी हो रहा है। जोड़तोड की राजनीति से सरकार निर्माण, अंतरराज्यीय जल विवाद, अंतरराज्यीय सीमा विवाद, केंद्र राज्य संबंध एवं वित्तीय अधिकार, योजना निर्माण में क्षेत्रीय असंतुलन, राज्यपाल की भूमिका, राष्ट्रपति शासन का अवसर इत्यादि कई ऐसे पहलू है जिनके आधार पर भारतीय लोकतंत्र में आम जनता का विश्वास कम होने लगता है।

कुछ विचारकों को मत यह है कि संविधान में यह सामर्थ्य मौजूद है कि संविधान संशोधन के जरिए परिवर्तन कर संविधान को समयानुकूल बनाया जा सकता है। जबकि कुछ विचारकों का मत यह है कि संविधान की पूरी समीक्षा हो और इसके लागू होने से अब तक के अनुभवों के आधार पर इसे बदला जाए। हालांकि यह दोनों ही विचार विद्यमान रहे हैं और व्यवहार में भी लाए गए हैं।

भारतीय संविधान ने लागू होने के बाद विश्व के सबसे बड़े लोकतंत्र के रूप में सफलता पाई है। इसकी कुछ सफलताओं को निम्नानुसार बताया जा सकता है-

- भारतीय संघ में 600 से अधिक रियासतों का सम्मिलन।
- पुर्तगालियों एवं फ्रेंच क्षेत्रों को भारत में शामिल करना।
- निष्पक्ष लोकतांत्रिक चुनाव।
- शरणाथियों का पुनर्वास
- राजाओं के प्रिवीपर्स की समाप्ति

- भूमि सुधार एवं जमींदारी प्रथा का उन्मूलन
- एक व्यक्ति-एक वोट को लागू करना
- सामाजिक न्याय हेतु कार्यक्रमों का क्रियान्वयन
- शांतिपूर्ण सरकारों का हस्तान्तरण
- नवीन राज्यों का शांतिपूर्ण गठन
- लोकतांत्रिक विकेंद्रीकरण हेतु गांवों एवं शहरों में स्थानीय निकायों को स्वायत्ता प्रदान करना।
- आरक्षण की व्यवस्था लागू करना
- लोककल्याणकारी राज्य की अवधारणा को लागू करना
- सामाजिक सुरक्षा प्रदान करना
- कार्यपालिका एवं न्यायपालिका के बीच शक्ति संतुलन
- लोकतांत्रिक प्रक्रिया के कारण चयनित सरकारों का सैन्य पक्ष पर नियंत्रण
- गुट निरपेक्षता की नीति का क्रियान्वयन
- आर्थिक सूचकांकों के आधार पर विश्व की तेजी से बढ़ती हुई अर्थव्यवस्था
- आर्थिक मंदी के दौर में केंद्रीय बैंक में लोगों का विश्वास बनाए रखना
- जीवन प्रत्याशा एवं मानव विकास सूचकांकों में अग्रिम स्थान प्राप्त करना
- चिकित्सा एवं शिक्षा के क्षेत्र में बेहतरीन प्रदर्शन

कठिनाईयां

भारतीय संविधान और उसकी लोकतांत्रिक प्रक्रियाओं ने आम जनता का विश्वास जीता अवश्य है परंतु अभी भी अनेक ऐसी घटनाएं है जो उसकी सफलता के सामने कठिनाईयां उत्पन्न करती है। जिस लोकतंत्र को भारतीय संविधान का सबसे सशक्त पक्ष कहा जाता है, उसके क्रियान्वयन में होने वाली घटनाएं उसके प्रति अविश्वास जाहिर करती है। सरकारों का व्यवहार और तंत्र के सशक्त व लोक के हाशिए पर होने की घटनाएं भारतीय संविधान के सामने कठिनाई उत्पन्न करती है।

- राजनीति में धनबल एवं अपराधीकरण का समावेश
- न्यायिक सक्रियता
- कार्यपालिका एवं न्यायपालिका में मतभेद
- सरकारी क्षेत्र में अल्पसंख्यकों एवं हाशिए के समूहों की कम सहभागिता
- केंद्र एवं राज्यों के बीच शक्ति एवं आर्थिक व्यवहारों को लेकर मतभेद
- अनुच्छेद 356 के लागू करने को लेकर मतभेद

- राज्यपाल की भूमिका को लेकर विवाद
- राज्यों के पुनर्गठन संबंधी विवाद
- संसदीय व्यवहार में क्षरण
- अल्पमत एवं गठबंधन सरकारों की अस्थिरता
- अंतरराज्यीय जल एवं सीमा विवाद
- महिला आरक्षण
- आपातकाल
- क्षेत्रीय असंतुलन एवं क्षेत्रवाद का बढ़ता प्रभाव
- क्षेत्रीयता पृथक्कता से राष्ट्रीय अखंडता को खतरा
- सरकारों का वित्तीय असंतुलन एवं प्रदर्शन
- सामाजिक सुरक्षा एवं मानव विकास सूचकांक में आशातीत सफलता नहीं
- काला धन
- आंतकवाद
- नक्सलवाद

संविधान समीक्षा आयोग

22 फरवरी, 2000 को राजग सरकार के प्रधानमंत्री श्री अटल बिहारी वाजपेयी ने पूर्व मुख्य न्यायाधीश एम.एन. बैंकटचलैया की अध्यक्षता में दस सदस्यीय राष्ट्रीय संविधान कार्यकरण समीक्षा आयोग का गठन किया। 23 मार्च, 2000 को इस आयोग की प्रथम बैठक में आयोग ने अपना कार्यक्षेत्र निर्धारण किया। आयोग ने माना कि निर्वाचित दलों में दल-बदली,सत्ता का विकेंद्रीकरण एवं पंचायती राजसंस्थाओं को मजबूत करना,गरीबी उन्मूलन के लिए संवैधानिक प्रावधान, अनुच्छेद-356 तथा राज्यपालों की नियुक्ति एवं बर्खास्तगी,मौलिक अधिकारों का विस्तार, नीति-निर्देशक तत्वों का प्रभावी क्रियान्वयन, मौलिक कर्तव्यों एवं वित्तीय तथा मौद्रिक नीतियों से संबंधित प्रावधान अहम् मुद्दे हैं, जिन पर विचार अपेक्षित है।

आयोग ने जनसाधारण, गैर-सरकारी संगठनों, संस्थाओं एवं अन्य हितबद्ध व्यक्तियों से सुझाव आमंत्रित कर 31 मार्च, 2002 को अपनी रिपोर्ट तत्कालीन कानून मंत्री को सौंपी। आयोग द्वारा की गई सिफारिशें इस प्रकार हैं-

- अनुच्छेद-15 एवं 16 के तहत् जातिगत अथवा सामाजिक व्युत्पत्ति, राजनीतिक या अन्य विचारधारा तथा सम्पत्ति या जन्म के आधार पर विभेद नहीं किए जाने का भी प्रावधान जोड़ा जाए। अनुच्छेद 19(1) के अधीन वाक एवं अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के अधिकार में प्रेस की स्वतंत्रता एवं सूचना के अधिकार को समाहित किया जाना चाहिए। न्यायालय की अवमानना से संबंधित मामलों में प्रभावित व्यक्तिको अपना बचाव प्रस्तुत करने का अवसर प्रदान किया जाना चाहिए। अनुच्छेद

21 में यह भी जोड़ा जाए कि किसी भी व्यक्ति के साथ निर्दयतापूर्ण, अमानवीय तथा हीन व्यवहार नहीं किया जाए और प्राण एवं दैहिक स्वतंत्रता से वंचित व्यक्ति को प्रतिकार पाने का अधिकार हो।

- संविधान के भाग चार के शीर्षक को बदलकर **राज्य के नीति-निर्देशक तत्व और क्रियान्वयन** कर देना चाहिए। राज्य को ऐसे प्रयास करने चाहिए ताकि पांच वर्षों में अधिकाधिक व्यक्तियों को रोजगार के अवसर उपलब्ध हो सकें। राज्य को अपनी नीतियों में कृषि उत्पादन सुधार, बागवानी विकास, पशुधनरक्षा, गुणवत्ता से युक्त डेयरी उत्पादन, भू एवं जल संरक्षण,जनसंख्या नियंत्रण तथा धार्मिक एवं सामाजिक सौहार्द संबंधी योजनाओं को स्थान देने का प्रयास करना चाहिए।
- नीति-निर्देशक तत्वों तथा आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक अधिकारों विशेषतः रोजगार, स्वास्थ्य, भोजन, वस्त्र, आवास, 14 वर्ष तक शिक्षा तथा संस्कृति पालन के अधिकारों की समीक्षा हेतु उच्चस्तरीय निकाय स्थापित किया जाना चाहिए।
- आयोग ने मूल कर्तव्यों (अनुच्छेद-51(क) का विस्तार करने का सुझाव देते हुए कहा है कि चुनावों में मतदान करना,कर चुकाना, बच्चों का शारीरिक एवं नैतिक विकास तथा औद्योगिक संगठनों द्वारा अपने कार्मिकों के बच्चों को शिक्षा प्रदान करना सम्मिलित किया है। मूलकर्तव्यों को प्रभावी बनाने हेतु जनता में मूल कर्तव्यों के प्रति जागरूकता एवं संवेदनशीलता उत्पन्न करने, अल्पसंख्यकों के अधिकारों का सम्मान करने, धार्मिक स्वतंत्रता एवं अन्य प्रकार की स्वतंत्रताओं की रक्षा करने तथा शिक्षा की संपूर्ण प्रक्रिया में सुधार करने के उपाय सुझाए हैं।
- सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीशों की नियुक्ति के लिए एक राष्ट्रीय न्यायिक आयोग का गठन किया जाना चाहिए। इस आयोग में सर्वोच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश की अध्यक्षता में सर्वोच्च न्यायालय के दो वरिष्ठ न्यायाधीश, केंद्रीय विधि एवं न्यायमंत्री तथा राष्ट्रपति द्वारा मुख्य न्यायाधीश के परामर्श पर एक ख्याति प्राप्त व्यक्ति को सदस्य बनाया जाना चाहिए।
- सभी पीठासीन अधिकारियों की नियमित बैठकें होनी चाहिए। विभागीय संसदीय समितियों के कार्य की समीक्षा संसदीय कार्यमंत्री तथा राजनीतिक दलों के मुख्य सचेतक द्वारा होनी चाहिए। राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था पर केंद्रीय स्थायी समिति का गठन किया जाना चाहिए। संशोधन प्रस्तावों तथा वर्तमान अनुमान समिति, सार्वजनिक उपक्रमों पर समिति तथा अधीनस्थ विधानों की समाप्ति की उचित छानबीन के लिए संसद के दोनों सदनों की स्थायी संविधान समिति बनायी जानी चाहिए।
- अनुच्छेद 105(2) में संशोधन करके यह स्पष्ट कर देना चाहिए कि संसदीय विशेषाधिकारों के अंतर्गत प्रदत्त उन्मुक्तियों के दायरे में अपने कर्तव्यपालन में उनके द्वारा किया गया भ्रष्ट आचरण नहीं रखा जाएगा।
- विधायी निकायों को प्रभावी बनाने हेतु यह आवश्यक है कि ऐसे अवसरों में कमी की जाए जिनमें मतदान करना पड़ता है। किसी भी एक सत्र में पहले से ही इस प्रकार के मतदान अवसरों की संख्या निर्धारित कर देनी चाहिए। विधायिका में सदस्यों की पूर्ण उपस्थिति हेतु विहप जारी करना चाहिए। दोनों सदनों में संसदीय समय का बंटवारा सरकार एवं विपक्ष के लिए उपयुक्त रूप से निर्धारित करना चाहिए।

ज्ञान शांति मैत्री

- किसी भी सरकार के विरुद्ध अविश्वास प्रस्ताव लाने के लिए सदन के कम-से-कम 20 प्रतिशत सदस्यों द्वारा नोटिस देना चाहिए तथा अविश्वास प्रस्ताव के साथ ही नए वैकल्पिक नेता के चुनाव का भी प्रस्ताव होना चाहिए। अविश्वास प्रस्ताव का निर्णय केवल सदन के पटल पर ही होना चाहिए।
- नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक की नियुक्ति से पूर्व लोकसभा अध्यक्ष से परामर्श लेने की एक स्वस्थ परम्परा विकसित की जानी चाहिए। नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक के कामकाज की जांच बाहर की किसी संस्था द्वारा करानी चाहिए।
- राजनीतिक दलों या दलीय गठबंधनों के पंजीकरण तथा कार्यकरण पर नियंत्रण के लिए एक व्यापक कानून बनाया जाना चाहिए। प्रत्येक राजनीतिक दल को बिना किसी भेदभाव के सभी भारतीय नागरिकों हेतु अपने द्वार खुले रखने चाहिए। राजनीतिक दलों को भारत की सम्प्रभुता तथा संविधान के प्रति निष्ठा रखनी चाहिए। जो राजनीतिक दल ऐसा नहीं करे उसकीं मान्यता रद्द कर देनी चाहिए।
- जनप्रतिनिधित्व अधिनियम, 1951 के अंतर्गत निर्वाचन आयोग को यह अधिकार दिया जाना चाहिए कि वह निर्वाचन अधिकारियों, पर्यवेक्षकों तथा नागरिक संस्थाओं की शिकायत पर बूथ कैप्चरिंग के संबंध में निर्णय ले सके। जाति एवं धर्म के नाम पर किए जाने वाले चुनाव प्रचार को प्रतिबंधित करने के लिए अनिवार्य रूप से सजा का प्रावधान होना चाहिए।
- संविधान की सातवीं अनुसूची की तृतीय सूची (समवर्ती सूची) में **प्राकृतिक एवं मानवजनित आपदाओं तथा आपात स्थितियों का प्रबंधन** विषय में सम्मिलित किया जाना चाहिए। सेवाओं की विशिष्ट गणना की जानी चाहिए ताकि राज्य द्वारा इन पर बाध्यकारी रूप से कर लगाया जा सके।
- अनुच्छेद 301, 302, 303 तथा 304 के अंतर्गत अंतरराज्यीय व्यापार एवं वाणिज्य की आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए तया व्यापार एवं वाणिज्य को बढ़ावा देने हेतु संसद द्वारा अंतरराज्यीय व्यापार एवं वाणिज्य आयोग की स्थापना की जानी चाहिए।
- नदी जल विवादों की सुनवाई कम-से-कम तीन न्यायाधीशों की पीठ द्वारा होनी चाहिए तथा आवश्यकता पड़ने पर पांच न्यायीधशों की पीठ को मामला सौंप देना चाहिए जो साक्ष्यों को रिकॉर्ड कर सके ताकि सर्वोच्च न्यायालय का अमूल्य समय बच सके। नदीजल अधिनियम, 1956 के स्थान पर एक नया व्यापक कानून बनाया जाना चाहिए। साथ ही विवादों के हल के लिए केंद्र एवं राज्य सरकार को अंतरराज्यीय परिषद् का प्रभावी उपयोग करना चाहिए।
- स्थानीय स्वशासन निकायों के चुनाव संबंधी समस्त प्रावधानों को एक कानून में समेकित किया जाना चाहिए। किसी चुनाव क्षेत्र के परिसीमन, आरक्षण तथा चक्रानुचक्र क्रम के कार्य हेतु एक परिसीमन आयोग बनाना चाहिए। राज्य निर्वाचन आयोग के माध्यम से पंचायती राज संस्थाओं के चुनाव होने चाहिए तथा स्थानीय चुनावों के लिए अधिकतम खर्च की सीमा इसी आयोग द्वारा निर्धारित की जानी चाहिए।
- संविधान की ग्यारहवीं एवं बारहवीं अनुसूची की पुनर्सरचना कर पंचायती राज संस्थाओं तथा नगरीय संस्थाओं के लिए विशेष राजकोषीय संपदाएं निर्धारित की जानी चाहिए। अनुच्छेद-280 में संशोधन

कर इस प्रकार का प्रावधान करना चाहिए कि वित्त आयोग वृहद् स्तर पर समीक्षा कर सके। सभी स्थानीय निकायों को राज्य सरकार एवं वितीय संस्थाओं से उधार लेने की अनुमति होनी चाहिए।

- महत्वपूर्ण निर्णय लेने में उच्च स्तरीय राजनीतिक प्राधिकारियों की सहायता के लिए एक स्वायत्त कार्मिक निकाय स्थापित किया जाना चाहिए। संयुक्त सचिव स्तर के ऊपर के पदों पर पदासीन अधिकारियों की खुली सामाजिक जांच होनी चाहिए। अनुच्छेद-311 में इस प्रकार संशोधन किया जाना चाहिए ताकि न केवल ईमानदार अधिकारियों को संरक्षा मिले बल्कि भ्रष्ट अधिकारियों को दण्डित भी किया जा सके।
- सिख, बौद्ध, तथा जैन मतों को उनकी अलग पहचान बनाए रखने के लिए हिंदुओं से पृथक् माना जाना चाहिए। अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति अत्याचार निरोधक अधिनियम, 1989को प्रभावी रूप से लागू करना चाहिए। सूखा शौचालय (प्रतिषेध) अधिनियम, 1993 को कड़ाई से लागू किया जाना चाहिए ताकि मैला ढोने के अमानुषिक कृत्य पर रोक लग सके। इसी प्रकार सफाई कर्मियों के लिए **रोजगार नियमावली**' का भी कठोरता से पालन होना चाहिए।
- सरकारिया आयोग की अनुशंसा को दोहराते हुए राष्ट्रीय संविधान कार्यकरण समीक्षा आयोग ने भी सुझाया है कि राज्यपाल की नियुक्ति से पूर्व संबंधित राज्य के मुख्यमंत्री से परामर्श लिया जाना चाहिए।
- राज्यपाल द्वारा किसी विधेयक को अनुमति प्रदान करने के लिए अधिकतम 6 माह की समय सीमा होनी चाहिए। ऐसे मामलों में जब राज्यपाल किसी विधेयक को राष्ट्रपति के पास परामर्श के लिए भेजता है तब राष्ट्रपति द्वारा स्वीकृति देने की अधिकतम समय सीमा 3 माह की होनी चाहिए। जब राष्ट्रपति किसी विधेयक को अनुमति देते हैं तो यह मानना चाहिए कि संविधान के सभी उद्देश्यों के लिए दी है।
- अनुच्छेद-356 बने रहना चाहिए लेकिन इसका उपयोग कम से कम करना चाहिए। प्रभावित राज्य की अपनी स्थिति स्पष्ट करने तथा परिस्थिति का सामना करने का अवसर मिलना चाहिए। सामान्यतः किसी राज्य में राष्ट्रपति शासन केवल राज्यपाल की रिपोर्ट के आधार पर ही लागू करना चाहिए। अनुच्छेद-356 में इस प्रकार सुधार करना चाहिए कि संसद में अभिज्ञापित होने से पूर्व राज्यपाल या राष्ट्रपति द्वारा राज्य विधानसभा की भंग न किया जा सके।
- आरक्षण व्यवस्था एक कानून के अंतर्गत होनी चाहिए जो आरक्षण के समस्त पक्षों को समाहित करती हो। अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति, तथा अन्य पिछड़े वर्गों के लिए आरक्षण न्याय अदालत तथा न्यायाधिकरण की स्थापना की जानी चाहिए।
- लोक उपक्रमों के विनिवेश संबंधी समझौता पत्रों में यह बात स्पष्ट कर देनी चाहिए कि नियुक्तियों में आरक्षण नीति को जारी रखा जाएगा।
- सार्वजनिक वितरण प्रणाली के अंतर्गत दुकानों तथा पेट्रोल पम्पों तथा गैस एजेंसियों के आवंटन में अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति तथा अन्य पिछड़ा वर्ग को आरक्षण मिलना चाहिए। पिछड़े वर्ग की महिलाओं के लिए भी उचित स्थान निर्धारित होने चाहिए।

- जनजातीय लोगों की सांस्कृतिक विरासत तथा बौद्धिक संपदा अधिकार रक्षा के लिए विशेष सुरक्षोपाय किए जाने चाहिए।
- खानाबदोश तथा अर्द्ध खानाबदोश समुदाय की उन्नति के लिए विशेष कार्यक्रम संचालित किया जाना चाहिए।
- बंधुआ श्रमिकों की मुक्ति एवं पुनर्वास हेतु अति शीघ्र एक राष्ट्रीय प्राधिकरण स्थापित किया जाना चाहिए।
- 9 जुलाई, 1997 के गौरव जैन मामले में सर्वोच्च न्यायालय के ऐतिहासिक निर्णय तथा वेश्यावृति,बाल वेश्यावृति एवं यौन श्रमिकों के बच्चों पर गठित सचिवों की समिति की रिपोर्ट को ध्यान में रखते हुए सरकार को उचित कदम उठाने चाहिए।

इसके अतिरिक्त आयोग ने पूर्वोत्तर राज्यों की समस्याओं पर विस्तार से रिपोर्ट प्रस्तुत की है जिनमें संविधान की पांचवीं अनुसूची के अंतर्गत शासित क्षेत्रों को छठी अनुसूची में सम्मिलित करने, घुसपैठ रोकने हेतु एक राष्ट्रीय आप्रवास परिषद् की स्थापना करने तथा स्वायत्त परिषदों और स्वायत्त जिला परिषदों में संशोधन करने इत्यादि सुझाव सम्मिलित हैं। आयोग ने सन् 1978-80 में प्रारूपित केन्द्रीय श्रम विधेयक, केंद्रीय सतर्कता आयोग विधेयक तथा राजकोषीय जवाब देयता विधेयक को शीघ्र पारित करने की भी अनुशंसाएं की है। आयोग में विदेशी मूल के व्यक्ति को उच्च पदों पर प्रतिबंधित करने के विवादस्पद मुद्दे को राजनीतिक दलों पर छोड़ दिया है ताकि व्यापक बहस के पश्चात् निर्णय किया जा सके।

राष्ट्रीय संविधान कार्यकरण समीक्षा आयोग की सिफारिशें 19 केंद्रीय मंत्रालयों,चुनाव आयोग, राज्य सरकारों तथा विभिन्न अभिकरणों से सम्बद्ध हैं जिन्हें क्रियान्वित करने के लिए 58 संविधान संशोधनों तथा 86 अधिनियमों की आवश्यकता है। भारत सरकार द्वारा शिक्षा को मौलिक अधिकार बनाने, सूचना का अधिकार अधिनियम पारित करने तथा दल-बदल रोक एवं मत्रिमण्डल के सदस्यों की संख्या निश्चित करने जैसे महत्वपूर्ण प्रयास किए जा चुके हैं। आयोग ने संविधान के मूल स्वरूप में परिवर्तन किए बिना ही क्रांतिकारी सुझाव दिए हैं जो सुखी, समृद्ध तथा उन्नत भारत में सुशासन के संदर्भ में निर्णायक सिद्ध होंगे।

आयोग ने इस अवधारणा को भी खंडित किया कि यह आयोग भारत के संविधान में छेड़छाड़ के लिए बनाया गया है। इसके द्वारा दी गयी अनुशंसाओं ने बदलती आवश्यकता के मद्देनजर संविधान में किए जाने वाले बदलाव को प्रस्तावित किया। यह जनता द्वारा निर्वाचित सरकारों का कार्य है कि वह किस प्रकार जनता को इन बदलावों के लिए तैयार करती है और जनता के हित में बदलाव करती है। (vivacepanorama)

4.3 सारांश

हमने इस इकाई में देखा कि संविधान एक जीवंत दस्तावेज है। दूरदर्शिता एवं भविष्य की संभावनाओं को दृष्टिगत रखने के बावजूद भी अनेक ऐसी परिस्थितियां और दबाव है जो अनुमान से परे होते हैं। अत: संविधान में परिवर्तन अवश्यम्भावी हो जाते हैं। भारत जैसे विविधतापूर्ण राष्ट्र में यह बदलाव और भी प्रमुख होते हैं। आजादी के बाद से भारत ने संविधान के आधार पर सफलतापूर्वक लोकतांत्रिक शासन का निर्वाह करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। आपातकाल के समय को छोड़ दिया जाए तो भारत में लोकतांत्रिक पद्धति का निर्वाह सफलतापूर्वक हुआ है। समय के साथ होने वाले बदलावों के कारण भारतीय संविधान में

लगभग 100 संशोधन हो चुके हैं। आगे आने वाले समय में और भी होंगे। इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि भारतीय संविधान में समय के साथ अपने आप को बदलने में सफल रहा है। भारत जैसे राष्ट्र के विकास की गति को सही दिशा देने में महत्वपूर्ण भूमिका भी निभा रहा है।

4.4 बोध प्रश्न

1. भारत में संविधान की सफलता के प्रमुख बिंदुओं को स्पष्ट कीजिए।
2. संविधान के सम्मुख कौन-कौन सी चुनौतियां रही है?
3. संविधान समीक्षा आयोग पर विस्तृत टिप्पणी लिखिए।

4.5 संदर्भ एवं उपयोगी ग्रंथ

- काश्यप, सुभाष(1995).*हमारा संविधान*. नई दिल्ली: नेशनल बुक ट्रस्ट.
- मेल्लील्ली, प्रवीणकुमार(2017).*भारत का संविधान, वृत्तिक आचारनीति और मानव अधिकार*. नई दिल्ली: सेज पब्लिकेशन्स.
- https://hi.wikipedia.org/wiki/भारतीय_संविधान
- http://india.gov.in/hi/my-government/constitution-india/constitution-india-full-text#p4
- http://www.vivacepanorama.com/

ज्ञान शांति मैत्री

खंड - 3

मानवाधिकार : दार्शनिक परिप्रेक्ष्य

ज्ञान शांति मैत्री

इकाई-1 मानवाधिकार : परिचय

इकाई की रूपरेखा

1.1 उद्देश्य
1.2 प्रस्तावना
1.3 मानवाधिकार का अर्थ
1.4 मानवाधिकार की बुनियादी प्रेरणा
1.5 सारांश
1.6 बोध प्रश्न
1.7 उपयोगी एवं संदर्भ पुस्तकें

1.1 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के उपरांत आप निम्नलिखित में सक्षम हो सकेंगे-

1. मानवाधिकार के अर्थ को व्यापक आधार पर समझने में।
2. मानवाधिकार की बुनियादी प्रेरणा को समझने में ।

1.2 प्रस्तावना

मानवाधिकारों को एक सभ्य समाज की बुनियाद माना जाता है । मानवाधिकारों के सार्वभौम घोषणा पत्र (1948) के अनुच्छेद एक में कहा गया है कि -*सभी प्राणी जन्म से ही स्वतंत्र तथा गरिमा और अधिकारों में बराबर हैं...।*

मानवाधिकार में जोर व्यक्ति पर है। कभी भी कहीं भी मानवाधिकार के नजरिए से किसी भी व्यक्ति के मानवाधिकार को समूह के नाम पर नहीं दबाया जा सकता है। यहाँ यह कहा जा सकता है कि मानवाधिकार के केन्द्र में जो एक महत्वपूर्ण विचार है वह यह है कि मनुष्य स्वयं चेतना के विकास की एक चरम अभिव्यक्ति है। यह वैज्ञानिक दृष्टिकोण से पृष्ट व सर्वस्वीकृत भी है तो मनुष्य के आचरण के दो पहलू उभरकर आते है कि –

- श्रेष्ठ होने के नाते सारी सृष्टि का शोषण करे, उपभोग करे, नष्ट करे।
- श्रेष्ठ होने के नाते समस्त सृष्टि के साथ ज्यादा उत्तरदायी होने के नाते सह अस्तित्व रखें।

मानवाधिकार की विचारधारा में द्वितीय भाग पर बल है। इस विचारधारा के केन्द्र में मनुष्य अवश्य है मगर यह मनुष्य केन्द्रियता उसे समस्त सृष्टि के साथ लूट-खसोट की और प्रेरित नहीं करती वरन उसे ज्यादा उत्तरदायित्व पूर्ण बनाकर सभी के साथ सामजंस्यपूर्ण गरिमापूर्ण जीवन व्यतीत करने के लिए प्रेरित भी करती है। यह मानवाधिकार विचारधारा का एक महत्वपूर्ण पक्ष है। इसी पक्ष के साथ एक अन्य महत्वपूर्ण बात ओर भी जुड़ी है कि कभी भी किसी भी व्यापक हित के नाम पर किसी भी एक

व्यक्ति के मानवाधिकारों का हनन नहीं किया जा सकता है। अगर ऐसा करने की छूट दे दी जाए तो कभी भी मानवाधिकार का हनन किया जा सकता है।

1.3 मानवाधिकार का अर्थ

मानवाधिकार प्रत्येक मनुष्य को उसे उसकी गरिमा के साथ जीवन यापन की सुविधाएँ देने का प्रयास करता है। इसका प्रयास होता है कि यह हर उस अमानवीय स्थिति को गलत बताता है जो मानवीय गरिमा को समाप्त करता है। मानवाधिकार का उल्लघंन अपने आप में हिंसा की अभिव्यक्ति है। मानवाधिकार की धारणा अपने आप में अहिंसा को एक मूल्य के रूप में स्थापित करना है। मानवाधिकार के नाते विश्व जनमत अप्रत्यक्ष रूप से अहिंसा को जीवन-मूल्य के रूप में ही स्वीकार करता है। मानवाधिकार अहिंसा की अभिव्यक्ति है और हिंसा के खिलाफ बचाव भी है। कोई भी समाज अहिंसा के बिना नहीं चल सकता है और मानवाधिकार इसी अहिंसात्मक वृत्ति की एक व्यावहारिक व सशक्त अभिव्यक्ति है। मानव होने के नाते व्यक्ति को जो अधिकार प्राप्त है वही मानवाधिकार है। इसे न तो कोई छिन सकता है और न ही कोई बदल सकता है। मानव अधिकार के अभाव में व्यक्ति अपने का सम्यक विकास नही कर सकता है। मानवाधिकार ऐसी परिस्थिति का नाम है जिसमें व्यक्ति अबाध ढ़ंग से अपने जीवन के विविध आयाम को विस्तार रुप देता है। व्यक्ति समाज में रहता है। हर समाज खुद को गढ़ने, रचने एवं गतिशील बनाने के लिए कुछ नियम एवं प्रतिमान बनाता है।

1.4 मानवाधिकार की बुनियादी प्रेरणा

मानव अधिकार का विचार हमारे राजनीतिक यथार्थ की एक महत्वपूर्ण विशेषता है । मानव अधिकार मुख्यत: राज्य के व्यवहार से व्यक्ति की सुरक्षा से संबंधित हैं लेकिन इसके साथ ही, ये राज्य के द्वारा ऐसी सामाजिक स्थितियों के निर्माण का भी निर्देश देते हैं, जिसमें व्यक्ति अपना पूर्ण विकास कर पाए । मानवाधिकारों की मूल अवधारणा में ही यह निहीत है कि यह व्यक्ति के अधिकार है जो उससे अलग नहीं किए जा सकते है साथ ही उस व्यक्ति को यह मानवाधिकार ‘‘जाति, रंग, नस्ल, धर्म स्थान इत्यादि की भिन्नता से परे प्राप्त है। मानवाधिकार का विचार स्वयं एक जीवन दर्शन को लेकर चलता हैं, उसके कई रूपों – सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक, सांस्कृतिक इत्यादि पक्षों को अभिव्यक्त करता है। इस विभिन्न रूपों / पक्षों को अभिव्यक्त कर प्राप्त करने सहमति बनाने का प्रयास करता है। अपने आधार को सुदृढ़ बनाने के लिए एक सशक्त दर्शन को स्वीकार करता है।

मानवाधिकार वे अधिकार है जो प्रत्येक व्यक्ति (Individual) को मानव होने के नाते प्राप्त है । मानवाधिकार में जोर मनुष्य पर है। साथ ही यह भी ध्यान रखना होगा कि यह निरा व्यक्तिवाद नहीं है अपितु समाज /समूह के नाम पर किसी भी एक व्यक्ति के अधिकारों की अनदेखी न हो, यह मानवाधिकार का उद्देश्य है। वास्तव में मानवाधिकार व्यक्ति की व्यक्तिक्ता का सम्मान है। यह किसी भी व्यक्ति से नहीं छीने जा सकते है। वास्तव में मानवाधिकारों का विचार दर्शन व्यापक जीवन दर्शन को अपना आधार बनाता है जिसमें सम्पूर्ण जीवन और समाज व्यवस्था आ जाती है। अत: सम्पूर्ण

मानवाधिकारों की अवधारणा में इसी बात पर जोर दिया गया है कि सभी मनुष्य रूप में समान है। अत: इनमें कोई भेदभाव नहीं होना चाहिए। इसके लिए मानवाधिकार की वैचारिकी ने मानवाधिकारों के भीतर ही जीवन के विभिन्न पहलुओं – आर्थिक, सामाजिक, राजनैतिक, सांस्कृतिक इत्यादि को अपनी मूल बात – सभी मनुष्य सम्मान है – के नजरिए से व्याख्यायित करने की कोशिश की है। अपने व्यापक जीवन दर्शन में मानवाधिकार ने यथासंभव इस कसौटी को पाने की कोशिष की है।

दार्शनिक स्तर पर मानवाधिकार की बुनियादी प्रेरणा यह है कि कोई व्यवस्था किस सीमा तक मनुष्य के बहुआयामी विकास को बढ़ाने के लिए वातावरण व सुविधाएं देती है। चूंकि 'राज्य' (State) भी एक व्यवस्था है या दूसरे शब्दों में कहें तो सर्वाधिक महत्वपूर्ण व्यवस्था है इसलिए मानवाधिकार के लिहाज से एक अच्छे राज्य की कसौटी यह है कि वह मानवीय विकास के लिए आवश्यक परिस्थितियों का निर्माण किस सीमा तक कर रहा है। यहां मानवीय विकास का तात्पर्य है मनुष्य के विवेक, उसकी गरिमा, स्वतंत्रता तथा सर्जनशीलता का विकास। यही कारण है कि मनुष्य मात्र की समानता और स्वतंत्रता मानवाधिकारों की संकल्पना का केन्द्रीय आधार है। यहां एक बात गौरतलब है कि यदि एक अच्छे राज्य की कसौटी मानवीय विकास के लिए आवश्यक परिस्थिति का निर्माण करना है तब राज्य मानवीय चेतना के विकास का एक उपकरण हो जाता है इसलिए यहां यह महत्वपूर्ण हो जाता है कि उसकी नीतियां भी इसी आधार पर तय हो। चूंकि सत्ता का वास्तविक स्त्रोत लोक/जन है इसलिए एक आदर्श राज्य की कसौटी यह हो जाती है कि वह अपनी प्रक्रियाओं में इस लोक/जन को कितना महत्व देता है। दूसरे शब्दों में कहें तो राज्य निम्न स्तर पर सत्ता को विकेन्द्रीकरण करता है या नहीं? राज्य का नागरिकों से प्रत्यक्ष सम्बन्ध स्थापित होता है या नहीं? तथा राजनीतिक निर्णयों को वह किस सीमा तक प्रभावित करता है। लेकिन यह विकेन्द्रीकरण तभी संभव हो सकता है जब इसकी संवैधानिक गांरटी हो तथा प्रत्येक व्यक्ति को सत्ता में भागीदारी मिले।

मानवीय विकास के लिए आवश्यक परिस्थितियों का निर्माण ही मानवाधिकारों की विचारधारा की मुख्य प्रेरणा है। मानवीय विकास से हमारा तात्पर्य है मनुष्य के विवेक, उसकी गरिमा उसकी स्वतंत्रता व सर्जनात्मकता का विकास। इसी कारण मनुष्य मात्र की समानता और स्वतंत्रता मानवाधिकार विचारधारा के मूल में है। इसस्थिति को पाने के लिए हमें यह ध्यान रखना होगा कि मानवाधिकार विचारधारा कहीं ऐसी प्रक्रिया को न अपना ले जो स्वयं मानवाधिकारों का हनन करने वाली हो।

मानवाधिकारों की विचारधारा को इस बात पर बल देना होगा कि वह अपने सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक दार्शनिक आधारों में इन बुनियादी मानवीय मूल्यों को पाने का प्रयास करे। राजनीति में मानवाधिकारों की प्रतिष्ठा का तात्पर्य शक्ति के स्थान पर सहयोग और आर्थिक जीवन में एक ऐसी अर्थव्यवस्था का विकास है जो प्रत्येक व्यक्ति से उसकी योग्यता के अनुसार काम ले और उसे उसकी आवश्यकतानुसार दे। शोषण विहीन भेदभाव विहीन मानवीय समाज मानवाधिकार का लक्ष्य है। एक ऐसा समाज जहाँ व्यक्ति खुद को भयरहित महसूस करे, अपने व्यक्तित्व के विकास के अवसर पा सकें, अपने से इतर अन्य के साथ सृजनात्मक रिश्ता बनाकर स्वतंत्र महसूस कर सके इसके लिए मानवाधिकार विचारधारा के सभी पक्षों का आपस में सहयोग होना अत्यन्त ही आवश्यक है।

ज्ञान शांति मैत्री

अधिकारों के विमर्श के संदर्भ में एक दिलचस्प बात यह है कि कोई भी मानव-अधिकारों के सिद्दांत को खारिज नहीं करता लेकिन हर जगह इनका उल्लंघन होता है। मानव अधिकारों को सार्वभौमिक और समय से परे सिद्धांत के रूप में नहीं देखा जाना चाहिए बल्कि इसे विविधतापूर्ण और गतिशील अधिकारों के रूप में मान्यता मिलनी चाहिए क्योंकि मानवाधिकार को आज सभ्य समाज की बुनियाद के रूप में देखा जाता है।

मानवाधिकार के संदर्भ में बात करें तो पहचान और मान्यता के बीच में जुड़ाव मानवीय जीवन के बुनियादी रूप से संवाद आधरित प्रकृति से उत्पन्न होता है। हम हमेशा अपनी पहचान को अपने नजदीकी महत्वपूर्ण लोगों (significant others) से संवाद या कभी-कभी टकराव के द्वारा परिभाषित करते हैं। चार्ल्स टेलर ने अपने प्रसिद्ध लेख *'द पॉलिटिक्स ऑफ रिकोगिनेशन'* में रिकोगिनेशन के दो अलग-अलग अर्थ बताएं हैं- पहला सार्वभौमवाद और समान गरिमा की राजनीति से संबंधित जो अधिकारों और हकदारियों की समानता से संबंधित है तथा दूसरा अन्तर की राजनीति (Politics of Difference) से संबंधित जिसमें समान गरिमा की राजनीति से अन्तर की राजनीति का उभार हुआ है। यह मान्यता प्रत्येक व्यक्ति की अनूठी पहचान की मान्यता से संबंधित है। जुर्गन हैबरमास ने टेलर के *'द पॉलिटिक्स ऑफ रिकोगिनेशन'* या मान्यता की राजनीति पर अपनी प्रतिक्रिया में मानव अधिकारों के *'अन्तर्वेशी सार्वभौमिकता'* की संकल्पना से संबंधित कुछ बिंदु स्पष्ट किए हैं। सच्ची सार्वभौमिकता का विचार यह है कि मानव अधिकार सभी व्यक्तियों और समूहों को शामिल करने के लिए मानकों की एकरूपता से संवंधित नहीं है। हैबरमास का मानना है कि व्यक्तियों के पहचान के निर्माण में उनके जीवन के परिस्थितियों या संदर्भों की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। व्यक्ति के इस रूप में निर्मित पहचान की सुरक्षा करने वाले मान्यता की राजनीति के लिए अधिकारों की व्यवस्था की नियमित उपस्थिति अनिवार्य है। मानवाधिकारों की बुनियादी प्रेरणा में मनुष्य के जिस बहुआयामी विकास की बात की गयी है उसमें व्यक्तित्व का विकास भी एक कसौटी है और व्यक्तित्व का विकास एक बुनियादी मानवाधिकार है। मानव जीवन को प्राकृतिक अधिकारों एवं सम्पदा के साथ जोड़ने तथा जीवन को गरिमामय तथा कल्याणकारी बनाने के लिऐ ऐतिहासिक कालक्रमिक विकास के उपरांत स्वरुप 10 दिसम्बर, 1948 को संयुक्त राष्ट्र संघ ने मानवाधिकार की सार्वभौम घोषणा प्रदान की। जिसमें उद्देशिका के साथ साथ 30 अनुच्छेद भी शामिल किये गये। ये तीस अनुच्छेद मानवाधिकार को संम्पूर्ण दुनिया में सार्वभौम बनाने की बात करते है। इसलिए अन्तरराष्ट्रीय स्तर पर 10 दिसम्बर मानव अधिकारों के इतिहास में एक महत्वपूर्ण दिवस है। इस दिन सार्वभौम घोषणा पत्र को स्वीकार किया गया था।

1.5 सारांश

मानव अधिकार से तात्पर्य उन सभी अधिकारों से है जो व्यक्ति के जीवन, स्वतंत्रता, समानता एवं प्रतिष्ठा से जुड़े हुए हैं। मानवाधिकार सभी अधिकारों का एक समूह है जो हर व्यक्ति को उसके लिंग,

जाति, पंथ, धर्म, राष्ट्र, स्थान या आर्थिक स्थिति की परवाह किए बिना दिया जाता है। इन्हें नैतिक सिद्धांत भी कहा जाता है जो मानव व्यवहार के कुछ मानकों को स्पष्ट करते हैं। कानून द्वारा संरक्षित ये अधिकार हर जगह और हर समय लागू होते हैं।

बुनियादी मानवाधिकारों में जीवन का अधिकार, निष्पक्ष सुनवाई का अधिकार, सक्षम न्यायाधिकरण, स्वतंत्रता और व्यक्तिगत सुरक्षा का अधिकार, संपत्ति का अधिकार, शिक्षा का अधिकार, शांतिपूर्ण विधानसभा और संघ का अधिकार, विवाह और परिवार का अधिकार, राष्ट्रीयता और इसे बदलने की स्वतंत्रता, भाषण की स्वतंत्रता, भेदभाव से स्वतंत्रता, दासता से स्वतंत्रता, विचारधारा की स्वतंत्रता, अंतरात्मा और धर्म, आंदोलन की स्वतंत्रता, राय और सूचना का अधिकार, पर्याप्त जीवन स्तर के अधिकार और गोपनीयता के साथ हस्तक्षेप से स्वतंत्रता आदि शामिल हैं।

हालांकि इन अधिकारों को कानून द्वारा संरक्षित किया गया है लेकिन फ़िर भी इनमें से कई अधिकारों का विभिन्न कारणों से लोगों द्वारा उल्लंघन किया जाता है। इन अधिकारों में से कुछ का सरकार द्वारा भी उल्लंघन किया जाता है। यह सुनिश्चित करने के लिए कि प्रत्येक व्यक्ति को इन बुनियादी अधिकारों का हक़ मिले इसलिए संयुक्त राष्ट्र की समितियों का गठन किया गया है। इन अधिकारों की निगरानी और सुरक्षा के लिए विभिन्न देशों और कई गैर-सरकारी संगठनों की सरकारें भी बनाई गई हैं।

1.6 बोध प्रश्न

प्रश्न:1- मानवाधिकार का क्या है? विस्तारपूर्वक लिखें ।

प्रश्न:2- मानवाधिकार की बुनियादी प्रेरणा क्या है।

प्रश्न:3- मानवाधिकार का पहचान एवं मान्यता से क्या संबंध है?

1.7 उपयोगी एवं संदर्भ पुस्तकें

ज्ञान शांति मैत्री

- आचार्य, नंदकिशोर. (2003). मानवधिकार के तकाजे. बीकानेर:वाग्देवी प्रकाशन.
- शर्मा, सुभाष. (2009). भारत में मानवधिकार. नई दिल्ली:नेशनल बुक ट्रस्ट.
- उपाध्याय, जय जय राम. (1999). मानव अधिकार. इलाहाबाद: सेंट्रल लॉ एजेंसी.
- मनवाधिकार शिक्षण प्रतिष्ठान (2009). मानवाधिकार : एक परिचय. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन.

इकाई-2 मानवाधिकार का दर्शन

इकाई की रूपरेखा

1.1 उद्देश्य
1.2 प्रस्तावना
1.3 मानवाधिकार का दार्शनिक आधार
1.4 सारांश
1.5 बोध प्रश्न
1.6 उपयोगी एवं संदर्भ पुस्तकें

1.1 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के उपरांत आप निम्नलिखित में सक्षम हो सकेंगे-

1. मानवाधिकार के दर्शन को व्यापक आधार पर समझने में;
2. मानवाधिकार की धार्मिक/ दार्शनिक प्रेरणा को समझने में ।

1.2 प्रस्तावना

मानवाधिकार का विचार स्वयं एक जीवन दर्शन को लेकर चलता हैं, उसके कई रूपों – सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक, सांस्कृतिक इत्यादि पक्षों को अभिव्यक्त करता है। इस विभिन्न रूपों /पक्षों को अभिव्यक्त कर प्राप्त करने सहमति बनाने का प्रयास करता है। अपने आधार को सुदृढ़ बनाने के लिए एक सशक्त दर्शन को स्वीकार करता है। यह दर्शन ग्रीक समय से निरंतर विकसित हुआ है और आज भी निरंतर विकास की राह पर है। मानवाधिकार की पृष्ठभूमि को समझने का प्रयास करे तो यह स्पष्ट होता है कि –

> "मानवाधिकार वे अधिकार है जो मनुष्य होने के नाते स्वयंमेव प्राप्त है। यह अधिकार व्यक्ति को स्वयं को व्यक्ति रूप में बनाए रखने के लिए आवश्यक है।"

मानवाधिकार में जोर मनुष्य पर है। साथ ही यह भी ध्यान रखना होगा कि यह निरा व्यक्तिवाद नहीं है अपितु समाज /समूह के नाम पर किसी भी एक व्यक्ति के अधिकारों की अनदेखी न हो, यह मानवाधिकार का उद्देश्य है। वास्तव में मानवाधिकार व्यक्ति की व्यक्तिक्ता का सम्मान है । यह किसी भी व्यक्ति से नहीं छीने जा सकते है। वास्तव में मानवाधिकारों का विचार दर्शन व्यापक जीवन दर्शन को अपना आधार बनाता है जिसमें सम्पूर्ण जीवन और समाज व्यवस्था आ जाती है। अत: सम्पूर्ण मानवाधिकारों की अवधारणा में इसी बात पर जोर दिया गया है कि सभी मनुष्य रूप में समान है। अत: इनमें कोई भेदभाव नहीं होना चाहिए। इसके लिए मानवाधिकार की वैचारिकी ने मानवाधिकारों के भीतर ही जीवन के विभिन्न पहलुओं – आर्थिक, सामाजिक, राजनैतिक, सांस्कृतिक इत्यादि को

अपनी मूल बात – सभी मनुष्य समान है, के नजरिए से व्याख्यायित करने की कोशिश की है। अपने व्यापक जीवन दर्शन में मानवाधिकार ने यथासंभव इस कसौटी को पाने की कोशिश की है।

1.3 मानवाधिकार का दार्शनिक आधार

मानवाधिकार विचारधारा को विभिन्न पक्ष से स्वीकृति मिलती है और प्रारंभ से ही समाज के अनेक विचार / दर्शन आते रहे जिन्होंने मानवाधिकारों को पुष्ट करने का कार्य किया। इन संबंध में ध्यान देने योग्य बात यह है कि प्रारंभ में मानवाधिकार शब्द का प्रयोग नहीं था। जिन विचारों को आज मानवाधिकार शब्द के अन्तर्गत लिया जाता है उन्हें या उनके बीज रूपों को अपने इतिहास के कालक्रय में अनेक समयों पर भिन्न – भिन्न नामों से पुकारा गया। प्रारंभ में यह प्राकृतिक कानुन (Natural law) फिर मनुष्यों के अधिकार (Right of man) फिर प्राकृतिक अधिकार (Natural Right) फिर यह मानवाधिकार (Human Rights) से जाने गए।

- **धार्मिक आधार**

प्राचीन समय में धर्म महत्वपूर्ण था। सम्पूर्ण जीवन ही धर्म द्वारा संचालित था। यद्यपि धार्मिक दृष्टिकोण से मानवाधिकारों की स्पष्ट सहमति कम देखने को मिलती है परन्तु गहनता से अवलोकन करने पर धार्मिक पक्ष से भी मानवाधिकार विचार पृष्ट होता है। इसका एक बड़ा कारण तो यह भी कि सभी धर्म लगभग मनुष्यों को एक समान मानने की बात सिद्धांतत: तो करते ही है।
लगभग सभी धर्म सृष्टि को ईश्वर द्वारा रचित मानते है अत: मनुष्य भी उसी की कृति है। अत: बीज रूप में समानता का स्वीकार है। जैन धर्म सम्पूर्ण सृष्टि को जीव-अजीव में विभक्त करता है। जीव तत्व में भेद इंद्रियों के आधार पर करता है मगर सभी मनुष्यों को समान मानता है। बौद्ध धर्म के अन्तर्गत माना गया है कि जन्म–मरण, दु:ख चक्र सभी के लिए है चाहे प्रजा हो या राजा। सभी मनुष्य रूप में समान ही है। इस्लाम तथा ईसाई दोनों धर्म भी मानव को ईश्वर द्वारा रचित मानते है। अत: मानवों में अन्तर्निहित समानता है।
इस प्रकार धर्मो के दार्शनिक आधारों से भी मावाधिकार की भावना की पृष्ठि होती है। सभी धर्मो में यह बात लगभग समान रूप से पाई जाती है कि सभी मानव ईश्वर की कृति होने के नाते एक है। उनमें मानव मात्र के नाते कोई ऊंच-नीच, भेदभाव नहीं है। मानव होने के नाते मानवीय गरिमा से सभी समान है।

- **दार्शनिक आधार**

मानवाधिकार के कुछ बीज हमें ग्रीक रोमन फिलॉसाफी में संकेत रूप में मिलते है। यहाँ यह बात कही गई कि मनुष्य मात्र के नाते व्यक्ति के कुछ अधिकार होने चाहिए। बाद में स्टोइक्स स्कूल का मानना था- न्याय “Right reason” (सही विवेक /सही तर्क /सटीक नैतिक बोध) के आधार पर तय होना चाहिए। प्रत्येक मनुष्य को मनुष्य रूप में बने रहने का अधिकार है। उदाहरण स्वरूप ग्रीक साहित्य में सोफोक्लीज का ‘एंटीगनी’ नाटक। इस नाटक में एंटीगनी लड़की है जो भाई के शव का अंतिम संस्कार

करना चाहती है मगर राजा अनुमति नही देता। एंटीगनी कहती है कि मुझे मनुष्य होने के नाते कुछ अधिकार है जो राज्य / राजा के कानून के ऊपर है, ये अधिकार प्रकृति ने मुझे दिए है। इस नाटक द्वारा सोफोक्लीज मनुष्य होने के अधिकार को राजा के आदेश / राज्य के कानून पर वरीयता देता है। साथ ही अरस्तु के नैतिकता (Ethics) में भी मानवधिकार की कुछ बातें मिलती है।

मानवाधिकार की धारणा का सशक्त आधार रोमन लॉ के भीतर प्राप्त होता है। रोमन लॉ से प्राकृतिक कानुन की धारणा विकसित हुई अर्थात कुछ कानून है जो प्रकृतिगत प्राप्त है। इसमें एक प्रमुख नाम सिसरो नाम के दार्शनिक का है जिन्होंने व्यक्ति की गरिमा को महत्वपूर्ण स्थान दिया। इनके अनुसार क्षमताओं के आधार पर व्यक्ति भिन्न –भिन्न हो सकते है मगर जैविक आवश्यकताओं तथा ऐसी ही अन्य बातों के संबंध में सभी व्यक्ति समान है। जरूरतें समान है तो सभी की जरूरतों को समान माना जाना चाहिए। प्राकृतिक विधि वे कानून हैं जो व्यक्ति को स्वमेव प्राप्त है और समाज को ये कानून संचालित भी करते हैं। इसके अनुसार कुछ कानून ऐसे है जिसमें सभी व्यक्ति मानव गरिमा व सामाजिक आवश्यकताओं में समान है। अत: प्राकृतिक विधिशास्त्र को महत्व दिया जाना चाहिए। प्राकृतिक विधि के सिद्धांत का प्रभाव बाद में भी जारी रहा।

इसी प्राकृतिक विधि के सिद्धांत को माध्यम में थामस एक्वीनास ने सामंतवादी व्यवस्था में अपनाया। हालाँकि सामंतवाद की अपनी समस्याएँ थीं मगर एक्वीनास ने जन्मगत आधार पर भेदभाव ऊँच-नीच को अस्वीकार किया। थॉमस एक्वीनास मूलत:एक धार्मिक चिंतक थे। इनके अनुसार प्राकृतिक विधि ईश्वर का अंश है, यह ईश्वरीय कानून (law of God) है। दुनिया ईश्वरीय कानून से चले। यह सभी पर लागू होता है। ईश्वर के कानून में जन्म लेने वाले का भी हिस्सा होगा। अत: जन्म लेते ही सभी को समान रूप से कुछ अधिकार प्राप्त हो जाते है।

मध्ययुगीन काल में प्राकृतिक विधि पर ज्यादा जोर था। प्राकृतिक विधि मनुष्य के अधिकारों के स्थान पर कर्त्तव्य से ज्यादा संबंध रखती थी। इस समय में दासता, कृषक दासता को स्वीकार करने से स्वतंत्रता बाधित हुई।

पुनर्जागरण काल के परिवर्तनों ने प्राकृतिक विधि से प्राप्त अधिकारों को जनता को देने में प्रमुख भूमिका निभाई। इसी समय प्राकृतिक विधि में कर्त्तव्यों के स्थान पर अधिकारों पर ज्यादा बल दिया जाने लगा। इस समय में प्राकृतिक विधि व प्राकृतिक अधिकार के विचार प्रभावशाली रहे। मानवाधिकार को एक प्रमुख व सशक्त दार्शनिक आधार देने में विधिशास्त्री और अन्तर्राष्ट्रीय कानून के जनक कहलाने वाले ह्यूगो ग्रोसिएस का प्रमुख योगदान रहा। इनके अनुसार मानवाधिकार अन्तराष्ट्रीय विधि का हिस्सा है। मानवाधिकार सार्वभौम मानव समाज के लिए है। अत: मानवाधिकार का अन्तर्राष्ट्रीय कानून से अवश्य अभावी रिश्ता होना चाहिए। ग्रोसिएस पहले कही गई ''सही विवेक'' की बात को आगे बढ़ाते हुए बताते है कि ''सही विवेक'' क्या है? उनके अनुसार- समाज के व्यक्ति शांति एवं संगतपूर्वक रहें (The (all human) should live peacefully and in harmony) यही सही विवेक है।

समाज के व्यक्ति शांति एवं संगतपूर्वक रहें एक तरह से सामाजिक वृति (Social Impulse) है। इसके बिना समाज बन ही नहीं सकता। समाज को बनाने वाली वृत्ति (Social Impulse) यही है। इसका एक अर्थ यह भी है कि प्रत्येक व्यक्ति को जीवन जीने का अधिकार दिया जाए और समाज इसे मान्यता दे। सभी व्यक्तियों को समान माना जाएगा और मनुष्य होने के नाते उसकी गरिमा का सम्मान होगा इसकी गारंटी दी जानी चाहिए। अगर ऐसा नही है तो समाज के सही विवेक में गडबड़ी है।

1.4 सारांश

मानवाधिकार प्रत्येक मनुष्य को उसे उसकी गरिमा के साथ जीवन यापन की सुविधाएँ देने का प्रयास करता है। इसका प्रयास होता है कि यह हर उस अमानवीय स्थिति को गलत बताता है जो मानवीय गरिमा को समाप्त करता है। मानवाधिकार का उल्लघंन अपने आप में हिंसा की अभिव्यक्ति है। मानवाधिकार की धारणा अपने आप में अहिंसा को एक मूल्य के रूप में स्थापित करना है। मानवाधिकार के नाते विश्व जनमत अप्रत्यक्ष रूप से अहिंसा को जीवन-मूल्य के रूप में ही स्वीकार करता है। मानवाधिकार अहिंसा की अभिव्यक्ति है और हिंसा के खिलाफ बचाव भी है। कोई भी समाज अहिंसा के बिना नहीं चल सकता है और मानवाधिकार इसी अहिंसात्मक वृत्ति की एक व्यावहारिक व सशक्त अभिव्यक्ति है। मानव होने के नाते व्यक्ति को जो अधिकार प्राप्त है वही मानवाधिकार है। इसे न तो कोई छिन सकता है और न ही कोई बदल सकता है। मानव अधिकार के अभाव में व्यक्ति अपने का सम्यक विकास नही कर सकता है। मानवाधिकार ऐसी परिस्थिति का नाम है जिसमें व्यक्ति अबाध ढ़ंग से अपने जीवन के विविध आयाम को विस्तार रुप देता है।

1.5 बोध प्रश्न

प्रश्न:1- मानवाधिकार का क्या तात्पर्य है?

प्रश्न:2- मानवाधिकार के दर्शन को विस्तारपूर्वक लिखें।

प्रश्न:3- मानवाधिकार के धार्मिक आधार क्या हैं?

ज्ञान शांति मैत्री

1.6 उपयोगी एवं संदर्भ पुस्तकें

- आचार्य, नंदकिशोर. (2003). मानवधिकार के तकाजे. बीकानेर:वाग्देवी प्रकाशन.
- शर्मा, सुभाष. (2009). भारत में मानवधिकार. नई दिल्ली:नेशनल बुक ट्रस्ट.
- उपाध्याय, जय जय राम. (1999). मानव अधिकार. इलाहाबाद: सेंट्रल लॉ एजेंसी.
- मनवाधिकार शिक्षण प्रतिष्ठान (2009). मानवाधिकार : एक परिचय. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन.

इकाई- 3 मानवाधिकार विकास के चरण

इकाई की रूपरेखा

3.1 उद्देश्य

3.2 प्रस्तावना

3.3 मानवाधिकार का ऐतिहासिक विकास

3.4 सारांश

3.5 बोध प्रश्न

3.6 उपयोगी एवं संदर्भ पुस्तकें

3.1 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के उपरांत आप निम्नलिखित में सक्षम हो सकेंगे-

3. मानवाधिकार के ऐतिहासिक विकास को समझने में।

4. भारत में मानवाधिकार के विकास को समझने में।

3.2 प्रस्तावना

मानव होने के नाते व्यक्ति को जो अधिकार प्राप्त हैं, वही मानवाधिकार है। इसे न तो कोई छिन सकता है और न ही कोई बदल सकता है। मानव अधिकार के अभाव में व्यक्ति अपने स्व का सम्यक विकास नहीं कर सकता है। मानवाधिकार ऐसी परिस्थिति का नाम है जिसमें व्यक्ति अबाध ढंग से अपने जीवन के विविध आयाम को विस्तार रुप देता है। व्यक्ति समाज में रहता है। हर समाज खुद को गढ़ने, रचने एवं गतिशील बनाने के लिए कुछ नियम एवं प्रतिमान बनाता है। इसी परिप्रेक्ष्य में समाज राज्य परिकल्पना करता है और उसे मूर्त रुप देता है। समाज के सभी लोग एक समान हैसियत रखते हुए अपने कुछ अधिकार राज्य को सुपूर्द कर देते हैं। कुछ ऐसे अधिकार होते हैं जो समाज के लोग अपने पास अपने अस्तित्व एवं उसके विकास के लिए रख लेते हैं। जो अधिकार समाज के नागरिक अपने पास रख लेते हैं अर्थात राज्य को हस्तान्तरित नही करते हैं उन्हें ही मानवाधिकार कहते हैं। जब इसी मानवाधिकार को संवैधानिक दर्जा राज्य द्वारा नागरिकों के प्रत्याभूत हेतु प्रदान कर दिया जाता है तो वह ‘मौलिक अधिकार’ बन जाता है। इस ब्रम्हाण्ड में हर चीज का चाहे वह मूर्त हो या अमूर्त उसका उद्गम से वर्तमान तक का अपना इतिहास रहा है। मानवाधिकार एवं मौलिक अधिकार का भी दुनिया के इतिहास में अपना एक इतिहास रहा है, जो संघर्ष एवं सहयोग दोनों से ओत-प्रोत है। जब राज्य खुद को दैनिक रुप का दर्जा दे दिया तथा सामाजिक समझौता (social contract) के सिद्धान्त को भूलते हुए नागरिकों को दासत्व पूर्ण जीवन जीने हेतु विवश किया। फलस्वरूप जनक्रान्ति हुई एवं राज्य के सापेक्ष नागरिकों ने संघर्ष चलाया। इस प्रकार देखा जाये तो मानवाधिकार का विषय हमेशा सक्षम संगठन राज्य एवं उसके नागरिकों के मध्य शक्ति सन्तुलन का मानदण्ड भी प्रदान करता है। मानवाधिकार की शुरुआत 1789 में अमेरिका द्वारा मूल अधिकार की स्वीकृति के साथ हुई तो 1789 में अमेरिका द्वारा मूल अधिकार के स्वीकृति के साथ हुई जिसने 1791 में ‘बिल ऑफ राइट’ द्वारा मूर्त रुप लिया।

3.3 मानवाधिकार का ऐतिहासिक विकास

मानवाधिकार का इतिहास मानव जीवन के उद्भव के साथ ही प्रारम्भ होता है। इस मानवाधिकार सम्प्रत्यय का प्रयोग सर्वप्रथम अमेरिका के राष्ट्रपति रुजवेल्ट ने 16 जनवरी, 1941 में कांग्रेस को संबोधित करने के समय अपने भाषण में किया था। जिसमें उन्होंने चार मानवीय मूल्यों की बात की- (1) अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता (2) धार्मिक स्वतंत्रता (3) आर्थिक निर्भरता या गरीबी से मुक्ति (4) भय से स्वतंत्रता।

आगे राष्ट्रपति रुजवेल्ट ने कहा कि 'हमारा समर्थन उन्हीं लोगों के साथ है जो इनके पाने अथवा बनाये रखने हेतु संघर्ष करते हैं। परन्तु मानव अधिकार का वर्तमान रुप रुजवेल्ट के भाषणों की निष्पत्ति भर नहीं है। इसका विकास तो प्राचीन काल के दार्शनिकों एवं राजाओं के विचारों एवं निर्णयों से संबंधित रहा है। इसलिए मानवाधिकार के इतिहास को जानने के लिए प्राचीन काल से संबंधित घटनाओं का क्रमागत अध्ययन करना होगा। अत: मानवाधिकार के ऐतिहासिक विकास के स्वरुप को जानने के लिए इसको तीन कालों में प्रथम- प्राचीन काल में मानवाधिकार, द्वितीय- मध्यकाल में मानवाधिकार और तृतीय- आधुनिक काल में मानवाधिकार।

- **प्राचीन काल में मानवाधिकार**

जहां तक मानव इतिहास का सवाल है तो वह पाषाण काल से ही प्रारम्भ होता है। जहां मानवाधिकार जीवन दर्शन में विद्यमान था। हमारे पूर्वज, जंगलों एवं पर्वतों में स्वतंत्र जीवन व्यतीत करते थे। जब धीरे-धीरे जनसंख्या बढ़ी तो संसाधन कम होने लगे, ऐसे में संघर्ष इन हमारे पूर्वजों के मध्य बढ़ा। संघर्ष के समाधान एवं व्यवस्था निर्माण हेतु कबीलाई सरदार की संकल्पना सामाजिक समझौता द्वारा पैदा हुई। जैसे-जैसे जनसंख्या बढ़ी संघर्ष की मात्रा बढ़ी। जिसके कारण कबिलाई सरदार की ताकत भी बढ़ी। यही ताकतबर कबिलाई सरदार कालान्तर में राज्य का राजा बन गया तथा कबिलाई लोग प्रजा बन गये। फिर राजा कई कारणों से दैवत्व को प्राप्त कर लिया, जिसके कारण वह एक छत्र शक्तिशाली बन बैठा। राजा तहर-तरह के नियंत्रण प्रजा (जनता) पर सम्प्रभु लादने लगा जिसके कारण जन्मसिद्ध मानव अधिकारों या प्राकृतिक अधिकारों का गला घोटा जाने लगा। अन्तत: कई दार्शनिक एवं विचारकों ने इस प्राचीन काल में मानवाधिकारों के संदर्भ में अपना विचार रखा तथा वैचारिक तथा व्यावहारिक स्तर पर प्रयास किया। प्राचीन ग्रीक में डेमोक्रिटस मानवतावादी सोफिस्ट दार्शनिक हुए उन्हेने बताया कि मनुष्य ही सभी चीजों का मानदण्ड होता है। इस प्रकार उनका यह विचार राज्य के देवत्व के सिद्धान्त का खंडन तथा कहीं न कहीं लॉक के सामाजिक समझौता के सिद्धान्त का मण्डन किया। सुकरात ने सत्य के अनुष्ठान के लिए ही विष का प्याला पीना स्वीकार्य किया। राज्य के सत्तावादी एवं दमनात्मक प्रकृति के खिलाफ उनकी यह मानवाधिकार की लड़ाई प्राणघातक सिद्ध हुई। 539 बी.सी. के आस-पास पर्सिया का राजा साइरस ने राज्य के बहिष्कृत दासों को पुन: राज्य में वापस आने तथा धार्मिक जीवन जीने के लिए आदेश दिया। इस प्रकार साइरस ने मानवाधिकार को सुरक्षित रखने का बड़ा निर्णय लिया। भारत में अछुतों एवं दलितों को स्वतंत्रता, समानता के अधिकार को पिलाने के लिए ही महात्मा बुद्ध ने कर्मकाण्डी समाज के विपरीत बौद्ध धर्म का अभियान चलाया।

- **मध्य काल में मानवाधिकार**

पूरे विश्व में मानवता का यह मध्यकालीन दौर मानवाधिकार के दमन का काल रहा है। यूरोप तो इस समय पूरी तरह धर्मांधता, अत्याचार, बुतपरस्ती के साम्राज्य से आच्छादित था। इसलिए यूरोप के इस दौर को (350 ई-

1453ई) अंधयुग कहा जाता है। इस युग में मानवाधिकार के लिए संघर्ष, आन्दोलन तथा कानून निर्माण का दर काफी कम रहा। आठवीं सदी में अरब प्रायद्वीप पर मुहम्मद साहब ने बुतपरस्ती, अन्धविश्वास, अत्याचार के खिलाफ संघर्ष किया तथा इस्लाम धर्म के तत्वाधान में पूरे खाड़ी देशों में मानवाधिकार के लिए लड़ाई लड़ी। भारत में भी कई साधु-संत एवं सुधारकों ने सामाजिक धार्मिक आन्दोलन के द्वारा इस युग में मानवाधिकार को पाने एवं सुरक्षित रखने में सहयोग दिया। औपचारिक तौर पर मध्यकाल में मानवाधिकार की शुरुआत ब्रिटेन में सर्वप्रथम 15 जून 2015 ई. में मैग्नाकार्टा के पारित होने से हुई। जिसमें पहली बार राजा एवं प्रजा दोनों को कानून के दायरे में लाया गया। अब राजा प्रजा पर मनमाना निर्णय नहीं थोप सकता था। इस घोषणा-पत्र द्वारा स्वतंत्रता एवं समानता के अधिकार का काफी कुछ जनता को प्रदान किया गया। इस प्रकार मैग्नाकार्टा राज्य को नागरिकों के अधिकारों के अतिक्रमण से बचाया।

- **आधुनिक काल में मानवाधिकार**

मानवाधिकार की मांग इस आधुनिक युग में आर्थिक, सामाजिक, शैक्षिक एवं राजनैतिक स्थिति के विकास के साथ-साथ बढ़ी। इस युग की जो मानवाधिकार से सम्बन्धित सबसे बड़ी बात है वह यह कि जॉन लॉक ने सामाजिक समझौता (Social Contract) का सिद्धान्त दिया जिसके तहत ब्रिटेन में चल रहे राजा एवं पार्लियामेंट के मध्य संघर्ष में पार्लियामेंट को वैचारिक बल प्राप्त हुआ तथा अन्त में पार्लियामेंट की विजय हुई। अब राज्य व्यक्ति से बढ़कर नहीं अपितु राज्य व्यक्ति के लिए बन गया।

दुनिया को सर्वाधिक मानवाधिकारवादी दर्शन किसी ने दिया तो वह है संयुक्त राज्य अमेरिका। इस मुल्क की सामाजिकता का इतिहास लगभग कुल 400 सालों का रहा है। इतने समय में इस मुल्क ने खुद यह देखा कि राज्य के दैवत्व का सिद्धान्त निरर्थक रहा है और सामाजिक समझौता का सिद्धान्त सार्थक रहा है। दुनिया में संयुक्त राज्य अमेरिका, आस्ट्रेलिया तथा न्युजीलैण्ड ऐसे मुल्क हैं, जिन्होंने अपनी आखों के सामने सामाजिक समझौता के सिद्धान्त के तहत राज्य को बनते एवं बढ़ते देखा है। 1776 ई. में अमेरिका ने ब्रिटिशों से स्वतंत्रता हासिल की। अमेरिका की यह स्वतंत्रता संधि कम प्रांतीय चरित्र की ज्यादा थी। 1787 ई. में सभी प्रांन्तों के प्रतिनिधि फिलाडेल्फिया नगर में मिले और संयुक्त राज्य अमेरिका का संविधान तैयार किया। 1789 में संविधान को प्रवर्तित किया गया तथा 1791 ई. में 'बिल ऑफ राइट' संविधान में जोड़ा गया। संविधान में बिल ऑफ राइट जुड़ते ही यह मौलिक अधिकार का रुप प्रदान कर लिया। आधुनिक काल में मानवाधिकार के विकास का एक व्यवस्थित काल क्रम रहा है। जिसको जानना मानवाधिकारों के इतिहास की समझ हेतु अति आवश्यक है। अत: इस मानवाधिकार के कालक्रमिक इतिहास निम्नलिखित है-

- **ब्रिटेन में ऐलिजाबेथ पुॅवर लॉ (1601) :** ब्रिटेन की 13वीं ऐलिजाबेथ नाम की महारानी के नाम पर संसद ने एक कानून पारित करके गरीब, अपंग एवं कमजोर लोगों के आवास, भोजन, कपड़ा, रोजगार, प्रशिक्षण उपलब्ध किया गया तो ब्रिटिश पार्लियामेंट द्वारा कल्याणकारी राज्य के साथ-साथ मानवाधिकार की तरफ सार्थक कदम था।
- **अधिकार याचिका अधिनियम (1628) :** इस अधिनियम का वास्तविक नाम 'The Petition of right Act 1828' था। इस समय ब्रिटेन के राजा किंग चार्ल्स प्रथम थे। इस अधिनियम को ब्रिटिश पार्लियामेंट ने पारित किया था। जिसमें यह प्रावधान किया गया था कि राजा बगैर संसदीय सहमति के किसी व्यक्ति को कैद नहीं कर सकता है। इसके अलावा एक और उपबंध किया गया कि

राजा जनता पर अब टैक्स (कर) नहीं लगा सकता है। इस तरह से यह अधिकार याचिका अधिनियम ने लोकतांत्रिक कलेवर में मानवाधिकार के दायरे को सुरक्षित एवं सक्षम बनाया तथा राजा के सत्तावादी स्थिति को खत्म कर दिया।

- **ब्रिटिश बिल ऑफ राई (1689) :** ब्रिटिश पार्लियामेंट द्वारा विकसित एवं पारित यह बिल पूरी तरह राजनैतिक एवं सिविल अधिकारों को केन्द्र में रख कर की गई थी। जिसके अन्तर्गत संसदीय सदस्यों को चयन के जगह निर्वाचन के द्वारा प्रवेश विधि निर्धारित किया गया। संसद में स्वतंत्र भाषण का अधिकार दिया गया तथा रानी को राजनैतिक मामलों में हस्तक्षेप न करने का निर्णय किया गया। इस तरह से इस विधेयक ने पार्लियामेंट के चरित्र को अधिकतम रुप में लोकतांत्रिक स्वरुप प्रदान कर दिया।
- **मानव अधिकार एवं नागरिकता घोषणा (1989) :** फ्रांस में क्रांति के उपरान्त फ्रांसीसी नागरिकों को इस घोषणा में समान रुप से स्वतंत्रता, समानता एवं बन्धुत्व के मूल्यों को प्रदान करने की बात की गई। इस घोषणा में सबसे महत्वपूर्ण उपबंध व्यक्तिगत संपत्ति रखने की आजादी थी। इस घोषणा में महिलाओं को किसी भी प्रकार की आजादी नहीं दी गई थी।
- **संयुक्त राज्य अमेरिका में 'बिल ऑफ राइट' का (1789) पारित होना :** अमेरिका में 1789 में संविधान पारित हुआ था। उसमें 1791 में 'बिल ऑफ राइट' जोड़ा गया। जिसके तहत यह प्रत्याभूत किया गया था कि राज्य इन अधिकारों का अतिक्रमण कभी नहीं करेगा पर इसके संरक्षण के लिए कोई न्यायिक उपबंध नहीं किया गया। अर्थात सरकार कुछ भी कानून बनाये मगर न्यायपालिका उसकी समीक्षा नहीं कर सकती थी। पर 1803 में विलियम मरबरी बाम जेम्स मेडिसन के निर्णय में मुख्य न्यायाधीश जान माईलि ने संविधान की सीमाओं का उल्लंघन करने वाले मुद्दे को गैर कानूनी घोषित कर दिया तबसे कार्यपालिका एवं विधायी संबंधी सभी कृत्य न्यायिक पुनरावलोकन के अधीन आ गया।
- **महिला मताधिकार (1893) :** दुनिया में कीवीयाई देश न्यूजीलैण्ड ने 1893 में अपने यहाँ सर्वप्रथम महिलाअें को मताधिकार का अधिकार दिया। यह एक ऐसा देश है जो उपनिवेशिक काल के समय यूरोपीय लोगों द्वारा स्थाई रुप से बसने पर राष्ट्र राज्य के अस्तित्व के रुप में सामने आया। इस प्रकार राजनैतिक रुप से महिलाओं को आजादी मताधिकार के अधिकारों को देकर किया। यह अधिकार संसदीय चुनाव से लेकर निकाय चुनावों तक प्रदान किये गए।
- **संयुक्त राष्ट्र संघ (1945) :** द्वितीय विश्व युद्ध समाप्त हो जाने के बाद दुनिया ने जन-धन को भारी पैमाने पर खोने का अहसास किया। आगे युद्ध की विभीषिका से बचने एवं राष्ट्रों के मध्य शक्ति सन्तुलन स्थापित करने के लिए संयुक्त राष्ट्र संघ की स्थापना की गई। इसने अपने घोषणा-पत्र में कहा कि 'हम संयुक्त राष्ट्र संघ के लोग अपनी संतति को युद्ध की विभीषिका से बचाने को संकल्प लेते हैं, जिसने हमारे जीवन को असीमित दु:ख पहुँचाया है। 1947 में सर हर्ष लाओटरपैच ने मानवाधिकार के संदर्भ में दिशा-निर्देश देते हुए विचार अभिव्यक्त किया था कि "मानवीय व्यक्तित्व की सुरक्षा तथा इसके मूल अधिकारों की सुरक्षा सभी प्रकार के कानूनों (राष्ट्रीय या अन्तर्राष्ट्रीय) का अन्तिम उद्देश्य रहा है। आगे 10 दिसम्बर, 1948 को संयुक्त राष्ट्र संघ ने मानवाधिकार का

सार्वभौमिक रुप प्रस्तावित किया जिसे सदस्य देशों ने स्वीकार किया। इसमें वैश्विक मानव जाति को दासता से मुक्ति, राजनैतिक, अभिव्यक्ति एवं संघ बनाने की स्वतंत्रता प्रदान की गई तथा सामाजिक, आर्थिक, आवास एवं शिक्षा का अधिकार भी प्रदान किये गये। इस पारित मानवाधिकार में कुल 30 अनुच्छेद हैं तथा 10 दिसम्बर को पारित होने के कारण प्रति वर्ष 10 दिसम्बर को मानवाधिकार दिवस मनाया जाता है।

- **10 दिसम्बर 1948 के बाद मानवाधिकार की यात्रा :** 10 दिसम्बर 1948 को संयुक्त राष्ट्र संघ मानवाधिकार का सार्वभौमिक घोषणा-पत्र जारी किया। उसके बाद संयुक्त राष्ट्र संघ सदस्य राष्ट्रों पर मानवाधिकार के उन्नयन एवं प्रावधान करने हेतु दबाब बनाना प्रारम्भ किया। संयुक्त राष्ट्र खुद विविध अपनी निकायों के गठन के माध्यम से पूरी दुनिया में मानवाधिकार के संरक्षण एवं पल्लवन हेतु कार्य करना प्रारंभ किया। इसके लिए संयुक्त राष्ट्र संघ की आर्थिक और सामाजिक परिषद ने सात आयोगों की स्थापना की।

1) मानव अधिकार आयोग
2) सांख्यिकीय आयोग
3) जनसंख्या आयोग
4) सामाजिक विकास आयोग
5) स्त्री प्रस्थिति आयोग
6) नार्कोटिक औषधि आयोग
7) अपराध निवारण और दण्ड न्याय आयोग।

1961 में एमनेस्टी इण्टरनेशनल की स्थापना की गई थी। हुआ यह कि ब्रिटिश वकील पिटर बेन्सन ने भारी पैमाने पर न्याय एवं स्वतंत्रता के लिए जन जागरुकता चलाया क्योंकि वो पुर्तगाली छात्रों को जेल में बन्द किया गया। इस प्रकार एमनेस्टी इण्टरनेशनल दुनिया में गहन प्रभाव डालती है। 1966 में आर्थिक एवं सांस्कृतिक अधिकारों अभिसमय पारित किया गया। इसके तहत आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक आजीविका, अवकाश, पर्याप्त रोटी-कपड़ा-मकान की व्यवस्था की गई।

1993 में वियना सम्मेलन के अन्तर्गत दुनिया में मानवाधिकार के आर्थिक, सामाजिक, राजनैतिक, अधिकारों को प्रदान करने की वकालत की गई। आज पूरे विश्व में मानवाधिकार के संरक्षण एवं उन्नयन के लिए जो कार्य हुए हैं, वह सराहनीय है पर दूसरी तरफ मानवाधिकार के नाम पर क्षेत्रीय एवं वैश्विक राजनीति अत्यंत ही दुखद स्थिति में है।

- **भारत में मानवाधिकार का औपचारिक रुप :** भारत विविधताओं का देश है। यहां सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक विषमता भी विविधता के साथ पायी जाती है। 15 अगस्त, 1947 को देश आजाद हुआ और 1948 में अन्तर्राष्ट्रीय मानवाधिकार संयुक्त राष्ट्र संघ के तत्वाधान में लाया गया। भारतीय संविधान जो 26 जनवरी, 1950 को लागू हुआ। जिसमें मौलिक अधिकार का उपलब्ध किया गया। यह मौलिक अधिकार मानवाधिकार के ही संवैधानिक रुप हैं। स्वतंत्रता, समानता, शोषण के विरुद्ध, धार्मिक स्वतंत्रता, संस्कृति एवं शिक्षा का अधिकार तथा संवैधानिक अधिकार भारतीय संविधान में मौलिक अधिकार के रुप में मानवाधिकार के ही विविध रुप हैं।

भारत में महिलाओं, दलितों, पिछड़ों, बच्चों, अल्पसंख्यकों के सुरक्षा, गरिमा एवं कल्याण के लिए समय-समय पर भारत में आयोग एवं समितिया बनी। फिर भी मानवाधिकार की एक स्वतंत्र संस्था भारत में 1993 में स्थापित की गई। जिसे मानवाधिकार आयोग कहा गया। यह आयोग भारत सीमा के अन्तर्गत गरीब, दलित, कमजोर, पिछड़े समूह के मानवाधिकार के रक्षा करता है एवं संबंधित मुद्दों की सुनवाई भी करता है। भारतीय संविधान में मौलिक अधिकार के रुप में जो मानवाधिकार भारत के नागरिकों को प्राप्त है उसके संरक्षण में न्यायपालिका के साथ-साथ राष्ट्रीय एवं राज्य स्तरीय मानवाधिकार भी अपनी भूमिका निभाता है।

3.4 सारांश

सारांश रुप में कहा जा सकता है कि मानवाधिक एक मानव जाति के लिए प्राकृति, जन्मसिद्ध या मौलिक अधिकार है। दुनिया में जो कुछ भी राष्ट्र राज्य के अन्तर्गत किया जाता है उसका पूर्णरुपेण उद्देश्य मानवाधिकार की सुरक्षा करना मानव जीवन की खुशहाली बढ़ाना है। इस प्रकार मानव जीवन की गरिमा से गहन सम्बन्ध मानवाधिकार रखता है। यह भी पूर्ण सत्य है कि मानवाधिकार का औपचारिक एवं संस्थागत रुप, जो आज पूरी दुनिया में विद्यमान है, का विकास क्रमागत रुप से लम्बे इतिहास में होने के उपरान्त स्वरुप आया है। भारत दुनिया का सर्वाधिक बड़ा लोकतांत्रिक देश है, जहां संविधान में मौलिक अधिकार प्रदान किया गया है पर 1993 में राष्ट्रीय एवं राज्य स्तरीय मानवाधिकार आयोग का गठन किया गया। जो वियना अधिनियम (1993) के तत्वावधान में हस्ताक्षर करने के बाद अस्तित्व में आया है।

3.5 बोध प्रश्न

प्रश्न:1- मानवाधिकार का क्या है? विस्तारपूर्वक लिखें।

प्रश्न:2- मानवाधिकार के विकास के विभिन्न चरणों को स्पष्ट करें।

प्रश्न:3- भारत में मानवाधिकार पर टिप्पणी लिखें।

ज्ञान शांति मैत्री

3.6 उपयोगी एवं संदर्भ पुस्तकें

- आचार्य, नंदकिशोर. (2003). मानवधिकार के तकाजे. बीकानेर:वाग्देवी प्रकाशन.
- शर्मा, सुभाष. (2009). भारत में मानवधिकार. नई दिल्ली:नेशनल बुक ट्रस्ट.
- उपाध्याय, जय जय राम. (1999). मानव अधिकार. इलाहाबाद: सेंट्रल लॉ एजेंसी.
- मनवाधिकार शिक्षण प्रतिष्ठान (2009). मानवाधिकार : एक परिचय. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन.

इकाई-4 मानवाधिकार के सिद्धांत

इकाई की रूपरेखा

4.1 उद्देश्य
4.2 प्रस्तावना
4.3 मानवाधिकार के विभिन्न सिद्धांत
4.4 सारांश
4.5 बोध प्रश्न
4.6 उपयोगी एवं संदर्भ पुस्तकें

4.1 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के उपरांत आप निम्नलिखित में सक्षम हो सकेंगे-

5. मानवाधिकार के विभिन्न सिद्धांतों को व्यापक आधार पर समझने में;
6. मानवाधिकार की बुनियादी प्रेरणा को समझने में।

4.2 प्रस्तावना

मानवाधिकारों को सम्पूर्ण विश्व जनमत से स्वीकृति मिल चुकी है। इस सहमतिका एक लम्बा इतिहास भी रहा है। समय-समय पर ऐसे कई सिद्धांत प्रतिपादित हुए जो मानवाधिकारों के लिए एक वैचारिक आधार तैयार करते थे और कई बार ऐसे सिद्धांत भी सामने आए जिन्होंने मानवाधिकारों की सार्वभौतिकता के सामने प्रश्नचिन्ह खड़े किए।

4.3 मानवाधिकार के विभिन्न सिद्धांत

❖ सामाजिक संविदा (Social Contract) सिद्धांत

प्रसिद्ध दार्शनिक जॉन लॉक ने मानवाधिकारों को एक महत्वपूर्ण आधार दिया। लॉक राज्य की उत्पति से संबंधित ''सामाजिक संविदा (Social Contract) सिद्धांत के एक महत्वपूर्ण विचारक थे। इनके अनुसार जीवन तो राज्य के होने से पहले ही है। अतएव प्राकृतिक विधि से प्राकृतिक अधिकार निकलते है। लॉक कुछ अधिकारों की बात करते है।

1. **जीवन का अधिकार :-** इसमें जीवन की मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति + मानवीय गरिमा का सम्मान तथा अन्य किसी को हानी पहुँचाने बगैर जीवन-यापन करना शामिल है।
2. **जीवन के स्वतंत्रता प्रयोग का अधिकार :-** लॉक इस अधिकार के द्वारा मनुष्य मात्र की स्वतंत्रता पर बल देते है।
3. **स्वार्जित संपत्ति का अधिकार :-** प्रत्येक व्यक्ति को अपने द्वारा संपत्ति अर्जिता करने का अधिकार है। मगर किसी तरह का शोषण मान्य नही होगा।

देखा जाए तो मूल तो जीवन का अधिकार है। बाद के दोनों अधिकार उसी के ही विस्तार हैं। अत: कोई राज्य, जिसका कार्य है कि वह इन तीनों अधिकारों की रक्षा एवं पोषण भी करे, अगर ऐसा नही करता तो वह अपना

ज्ञान शांति मैत्री

औचित्य खो देता है। उसे वैध (Valid) राज्य नहीं कह सकते है, उसे बदला जा सकता है। लॉक के अनुसार- वो कोई भी राज्य अवैध / अनैतिक है जो मानवाधिकारों की रक्षा नहीं करता है। बेंथम ने कहा कि अधिकार कानून से जन्म लेता है । वास्तविक अधिकार सही कानून से प्राप्त होता है (Right is a child of law real right comes from real law) । इसके साथ ही वेंथम कहते हैं कि प्राकृतिक कानून एक काल्पनिक धारणा है। मधुर कल्पना मात्र है । इसे अधिकार तभी कह सकते है जब राज्य इसे प्रदान करे या मान्यता दे। वहीं एडमंड वर्क कहते हैं कि प्राकृतिक विधि, प्राकृतिक अधिकार एक मिथक धारणा है। वास्तविक अधिकार प्रयोग सिद्ध नहीं किया जा सकता है ।

इन आलोचनाओं ने प्राकृतिक विधिव प्राकृतिक अधिकारों के पक्षघरों को सोचने पर विवश किया और इनके जवाब भी दिए गए ।

❖ उपयोगितावादी (utilitarianism) सिद्धांत

एक अन्य सिद्धांत मानवधिकार की पृष्ठभूमि के रूप में कार्य करने वाले विभिन्न सिद्धांतों में एक प्रमुख सिद्धांत है – उपयोगितावाद (utilitarianism) का सिद्धांत। इसके प्रमुख प्रवर्तक जर्मी बेंथम थे। इस सिद्धांत के अनुसार व्यक्ति की हर क्रिया (Activity) के पीछे जो सिद्धांत काम करता है वह सुख एवं दर्द (pleasure & pain) का है। किसी भी काम को करने से सुख होगा या दर्द यही उस कार्य की उपयोगिता निर्धारित करता है। अत: मनुष्य की पसंद वही व्यवस्था होगी जो सुख को बढ़ाएं और दर्द को काम करे। मानवाधिकार का उद्देश्य भी सभी मनुष्यों के लिए सुख को बढ़ाना व दर्द को कम करना है । अत: अधिकतम लोगों को अधिकतम सुख (Greatest good of Greatest Number) यही वह सिद्धांत है जिनके आधार पर राज्य को काम करना चाहिए। इस सिद्धांत के समर्थक मानते है कि कुछ अव्यवस्था रहेगी ही मगर व्यवस्था जितना अधिक प्रयास करेंगी, उतना ही यह कम होता जाएगा।

आलोचना :

मानवाधिकार में व्यक्तिवाद (Individuality) पर बल है मगर यह मानवाधिकार की धारणा के अनुकूल नहीं है। मानवाधिकार की अवधारणा में किसी भी एक व्यक्ति के अधिकार को समूह के नाम पर नष्ट/समाप्त नहीं किया जा सकता है। इस सिद्धांत में व्यक्ति की गरिमा का स्वीकार नहीं है। अत: यह मानवाधिकार के लिए उपयुक्त तो नहीं है मगर इसका इतना योगदान अवश्य रहा है कि इसने स्पष्ट किया कि राज्य का काम है कि व्यक्ति के उन्नति के लिए कार्य करे जो एक तरह से व्यक्ति के मानवाधिकारों को ही व्यवहार में लागू करने का प्रयास है।

❖ न्याय सिद्धांत (theory of justice)

यह सिद्धांत पिछली सदी में प्रसिद्ध था। यह भी मानवाधिकार को दार्शनिक आधार प्रदान करता है। जान राल्स ने **theory of justice** नामक पुस्तक भी लिखी है। वह इसमें सवाल पूछते हैं कि समाज का पहला गुण (First social virtue) क्या है? इसका उत्तर देते हुए वे कहते हैं कि समाज का पहला गुण न्याय प्रदान करना है। इसे स्पष्ट करते हुए जॉन रॉल्स बताते है न्याय किसी भी सामाजिक संस्था का प्रथम सदगुण (First virtue) है। यह न्याय ही सामाजिक न्याय है। न्याय का आधार है कि प्रत्येक व्यक्ति विशिष्ट है और व्यक्ति रूप में उसका अतिक्रमण नहीं किया जा सकता है।

जॉन रॉल्स के अनुसार यदि कहीं व्यक्ति की व्यैक्तिकता का अतिक्रमण हो रहा है तो वहाँ न्याय खड़ित होता है। स्वतत्रंता, समानता तथा व्यक्ति की व्यक्तित्व (Personhood) को स्वीकार किए बिना उसके साथ न्याय नहीं किया जा सकता है। इसी बात को आधार बना कर जॉन रॉल्स सामाजिक समझोंते को विश्लेषित करते है। वह कहते है कि सामाजिक समझौता है तो सभी समान है क्योंकि कोई भी संविदा/समझौता समान लोगों के बीच हो तभी वह उचित माना जाता है। साथ ही संविदा उचित भी तभी मानी जाती है जब वह शामिल पक्षों में समानता की बात करें। अगर मजबूरी में संविदा की जाती है तो वह बराबरी का व्यवहार नहीं है। अत: राज्य सामाजिक समझौते का फलन है तो यह संविदा राज्य के सभी सदस्यों के लिए समान व शुभ (Good) होनी चाहिए । अत: राज्य यदि मानवाधिकारों को स्वीकार नहीं करता तो वह राज्य न्याय से पूर्ण नहीं हो सकता। अत: इस आधार पर सार्वभौमिक अधिकारों का एक खाका खींचा जा सकता है। यह सुधार निम्न रूप से बताया जा सकता है।

1. कुछ स्वतंत्रताएं सबको मिलनी चाहिए।
2. समाज में जो कुछ उपलब्ध है उसके वितरण के दो वर्ग हो सकते हैं-
   I. समान अवसर (Equal opportunity) का अधिकार
   II. विशेष उपयों से कमजोरों का अधिकतम लाभ- यही वास्तव में सामाजिक न्याय है।

एकमंड कॉहन के अनुसार कोई समाज व्यवस्था समानता का अधिकार नहीं देती है तो अन्याय होता ही है। आखिर का न्याय अर्थ अन्याय को समाप्त करना है। यह अन्याय के उपचार की प्रक्रिया ही है। अत: मानवाधिकार अन्याय को समाप्त करने का ही एक साधन है।

❖ **गरिमा का सिद्धांत** :-

इस सिद्धांत के अनुसार मनुष्य होना सम्मान (गरिमा) की बात है। अत: इस अर्थ में सभी में सभी व्यक्ति समान है। इस सिद्धांत के प्रवर्तकों का विचार था कि ईश्वर ने सभी को समान बनाया है। अत: सभी में गरिमा समान है। दूसरी और कई विचारकों का मत था कि वास्तव में तो गरिमा अपने आप में अमूर्त कल्पना है मगर व्यवहार में इसका रूप समाज की तमाम प्रक्रियाओं में भाग लेने के समान अधिकार में ही आता है। अत: गरिमा का मूल रूप यही है कि सभी व्यक्तियों को समान रूप से समस्त सामाजिक क्रियाकलायों/प्रक्रियाओं/निर्णयों में सहभागिता का अधिकार प्राप्त हो। इस सिद्धांत के प्रवर्तकों द्वारा गरिमा प्राप्त करने के कुछ लक्षण बताते गए हैं जो कि समाज में होने चाहिए –

आदर (Respect)	शक्ति (Power)
औचित्य (Restitute)	अच्छाई(Wellbeing)
स्वास्थ्य (Health)	कौशल (Skill)
प्रेम (Affection)	

इन्हीं लक्षणों को प्राप्त करने का प्रयास समाज करता है । व्यक्ति की गरिमा का सम्मान हो रहा है अथवा नहीं इसका द्योतक यह है कि इन प्रक्रियाओं में समान अवसर मिलता है कि नहीं ।

❖ सुलहता सिद्धांत (Reconciliation Theory)

इसके प्रमुख समर्थक रॉनाल्ड डोर्किन (Ronald Dowrkine) है। यह सिद्धांत प्राकृतिक अधिकारों के सिद्धांत व उपयोगितावादी सिद्धांत दोनों को मिलाने की कोशिश करता है। बैंथम के अनुसार कानून राज्य बनाता है। साथ ही सुख एवं दर्द (Pleasure & pain) का भी ध्यान रखता है। रॉनाल्ड के अनुसार यह ध्यान देने की बात है कि बहुमत सभी को प्रतिबिम्बित नहीं करता है। यह ध्यान रखना होगा कि प्रत्येक व्यक्ति अपने आप में व्यक्ति विशेष है वह किसी अन्य को या कोई उसे प्रतिबिम्बित नहीं कर सकता है। कहने का अर्थ यह है कि व्यक्ति स्वयं अपना प्रतिनिधि होता है, कोई किसी का प्रतिनिधित्व नहीं कर सकता। अत: हर व्यक्ति समान है अतएव प्रत्येक व्यक्ति सुख का अधिकारी है। रॉनाल्ड डोर्किन के अनुसार –

1. कुछ अधिकार सभी को मिलनी चाहिए।
2. अगर हमें स्वतंत्रता व समानता के रिश्ते की बनाए रखना व पाना है तो राज्य हस्तक्षेप स्वीकार करना होगा । वास्तव में यही विचार आगे चलकर सामाजिक लोकतंत्र (Social Democracy) का आधार बना।

❖ मार्क्सवादी (Marxist) सिद्धांत

मार्क्सवादी विचारधारा के दृष्टिकोण में उन सामाजिक स्थितियों से निपटने तथा उन्हें बदलने का वर्णन अवश्य है जो मानवीय गरिमा के प्रतिकूल है परन्तु फिर भी ऐसा होते हुए भी मार्क्सवादी दर्शन के स्तर पर मानवाधिकार विचार को स्वीकृति नहीं मिलती । मार्क्सवादी दर्शन के अनुसार इतिहास की द्वन्द्वात्मक प्रक्रिया उत्पादनों के साधनों पर निर्भर करती है। चूंकि यह निरंतर बदलते रहते है अतएव दार्शनिक स्तर पर स्थायी अधिकार, स्थायी व्यवस्था जैसी कोई अवधारणा स्वीकार नहीं की गई है, जो सार्वकालिक/सार्वभौमिक हो। साथ ही मार्क्सवादी दर्शन में मानवाधिकार विचार को या ऐसे ही अन्य किसी भी विचार को अधिरचना (Super-Structure) माना गया है तब भी मानवाधिकार की स्वीकृति पुष्ट नहीं होती।

फिर भी मार्क्सवादी दृष्टिकोण का महत्व इस बात में है कि मानवाधिकारों को लेकर जमीनी स्तर पर लड़ने वाली लड़ाई में मार्क्सवादी आगे रहे है। मार्क्सवादी दर्शन में सशक्त आधार न होने के बावजूद भी मार्क्सवादी इस विचार के प्रति सहानुभूति अवश्य रखते है।

❖ नवमानववाद का सिद्धांत :-

हालाँकि एम.एन.रॉय ने कोई सिद्धांत तो ऐसा नही दिया जो सीधे –सीधे मानवाधिकार से जुड़ता है। मगर एकात्म भौतिकवाद और नवमानववाद में कुछ ऐसे तत्व मौजूद है जो मानवाधिकार के विचार को पुष्ट करते है। रॉय के अनुसार इतिहास की समस्त प्रक्रिया स्वतंत्रता की प्रक्रिया है। एक मूलभूत स्वतंत्रता सबसे अन्तर्निहीत है। पदार्थ (Matter) में जीवन आते ही जिजिविषा बनती है। यही जिजीविषा एक जैवकीय प्रवृति (Biological instinct) है जो मनुष्य में स्वतंत्रता के रूप में रूपान्तरित होती है। अत: प्रत्येक व्यक्ति जैविक रूप से स्वतंत्रता को अन्तर्निहित किए है। यह उसका अधिकार है। अतएव सभी में यह समान रूप से है इसलिए किसी को भी कम-ज्यादा, ऊँचा-नीचा मानना नहीं चाहिए। उसकी इस स्वतंत्रता का सम्मान होना चाहिए। हम देखते है कि मानवाधिकार की अवधारणा / विचारधारा के मूल में ही यह बात है। एम.एन.राय मानवाधिकार की वैचारिकी के लिए एक सशक्त वैज्ञानिक पृष्ठभूमि देते हैं।

❖ अहिंसक सिद्धांत :-

मानवाधिकार प्रत्येक मनुष्य को उसे उसकी गरिमा के साथ जीवन यापन की सुविधाएँ देने का प्रयास करता है। इसका प्रयास होता है कि यह हर उस अमानवीय स्थिति को गलत बताता है जो मानवीय गरिमा को समाप्त करता है। मानवाधिकार का उल्लघंन अपने आप में हिंसा की अभिव्यक्ति है। मानवाधिकार की धारणा अपने आप में अहिंसा को एक मूल्य के रूप में स्थापित करना है। मानवाधिकार के नाते विश्व जनमत अप्रत्यक्ष रूप से अहिंसा को जीवन-मुल्य के रूप में ही स्वीकार करता है। मानवाधिकार अहिंसा की अभिव्यक्ति है और हिंसा के खिलाफ कवच है। कोई भी समाज अहिंसा के बिना नहीं चल सकता है और मानवाधिकार इसी अहिंसात्मक वृत्ति की एक व्यावहारिक व सशक्त अभिव्यक्ति है।

4.4 बोध प्रश्न

प्रश्न:1- मानवाधिकार के प्राकृतिक अधिकार के सिद्धांत से क्या संबंध है? विस्तारपूर्वक लिखें।

प्रश्न:2- मानवाधिकार के विभिन्न सिद्धांतों को स्पष्ट करें।

प्रश्न:3- अहिंसक सिद्धांत पर टिप्पणी लिखें।

4.5 उपयोगी एवं संदर्भ पुस्तकें

- आचार्य, नंदकिशोर. (2003). मानवधिकार के तकाजे. बीकानेर:वाग्देवी प्रकाशन.
- शर्मा, सुभाष. (2009). भारत में मानवधिकार. नई दिल्ली:नेशनल बुक ट्रस्ट.
- उपाध्याय, जय जय राम. (1999). मानव अधिकार. इलाहाबाद: सेंट्रल लॉ एजेंसी.
- मनवाधिकार शिक्षण प्रतिष्ठान (2009). मानवाधिकार : एक परिचय. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन.

ज्ञान शांति मैत्री

खंड – 4

अंतरराष्ट्रीय एवं राष्ट्रीय परिदृश्य

इकाई-1 मानव अधिकारों की सार्वभौम घोषणा पत्र

इकाई की रूपरेखा

1.7 उद्देश्य
1.8 प्रस्तावना
1.9 मानवाधिकार के सार्वभौम घोषणा का उद्देश्य
1.10 मानवाधिकार के सार्वभौमिक घोषणा का स्वरुप
1.11 मानवाधिकारों के सार्वभौम घोषणा का प्रभाव
1.12 मानव अधिकारों की सार्वभौम घोषणा पत्र
1.13 भारत और सार्वभौम घोषणा
1.14 सारांश
1.15 बोध प्रश्न
1.16 उपयोगी एवं संदर्भ पुस्तकें

1.3 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के उपरांत आप निम्नलिखित में सक्षम हो सकेंगे-

7. मानवाधिकार के सार्वभौम घोषणा का उद्देश्य समझने में;
8. मानवाधिकार की बुनियादी प्रेरणा को समझने में।

1.4 प्रस्तावना

मानव जीवन को प्राकृतिक अधिकारों एवं सम्पदा के साथ जोड़ना तथा जीवन को गरिमामय एवं कल्याणकारी बनाने के लिऐ ऐतिहासिक कालक्रमिक विकास के परिणामस्वरूप 10 दिसम्बर, 1948 को संयुक्त राष्ट्र संघ ने मानवाधिकार की सार्वभौम घोषणा पत्र जारी की। जिसमें उद्देशिका के साथ-साथ 30 अनुच्छेद हैं। ये तीस अनुच्छेद मानवाधिकार को संम्पूर्ण दुनिया में सार्वभौम बनाने की बात करते हैं। जहाँ तक राजनैतिक या संवैधानिक बाध्यता का प्रश्न है तो ये सार्वभौमिक घोषणा सदस्य राष्ट्रों पर बाध्यकारी विधान नहीं है। कुछ विचारकों का मानना है कि बाध्यकारी स्वरुप होने के कारण मानवाधिकार का सार्वभौमिक घोषणा-पत्र रूढ़िवादी प्रकृति को धारण कर लेगा। जिसके कारण विश्व में मानवाधिकार के नाम पर सशक्त मुल्कों द्वारा कमजोर मुल्कों पर दमनात्मक प्रवृत्ति बढ़ेगी। फिर भी आज जहाँ भी मानवाधिकार के संदर्भ में दुनिया के किसी देश या संगठन को सीख लेना होता है तो वे मानवाधिकार के सार्वभौम घोषणा से निर्देशन प्राप्त करते हैं। आज पूरी दुनिया में लोकतंत्र शासन प्रणाली सार्वभौम रूप ग्रहण कर चुकी है। इस लोकतांत्रिक संरचना का आधार संबंधित देश के संविधान द्वारा तैयार किया जाता है। इस प्रकार संविधानवाद सम्पूर्ण विश्वव्यवस्था का महत्वपूर्ण आधार बन गया है। किसी संविधान की प्रासंगिकता इस बात पर निर्भर करती है कि उसमें मानवाधिकार एवं कल्याण की प्रस्थिति किस रुप में एवं कितना दर्ज है।

1.3 मानवाधिकार के सार्वभौम घोषणा का उद्देश्य

संयुक्त राष्ट्र संघ द्वारा 10 दिसंबर, 1948 को जो मानवाधिकार की सार्वभौमिक घोषणा हुई उसकी उद्देशिका अत्यन्त ही मानवहितकारी थी। उसकी कुछ पंक्तिया इस प्रकार हैं- "जबकि मानव परिवार के सभी सदस्यों की अन्तर्निहित गरिमा और समान तथा अभेद अधिकार विश्व में स्वतंत्रता, न्याय और शान्ति के आधार हैं।" मानवाधिकार की सार्वभौमिक घोषणा के उद्देश्य के स्वरुप का स्पष्ट रुप से वर्णन किया जाये तो दुनिया में राजनैतिक आदर्शों को स्थापित करना, दुनिया में स्वतंत्रता कायम करना, भूख और अभाव से मुक्ति, अत्याचार, उत्पीड़न से मुक्ति, लैंगिक समानता, उत्कृष्ट जीवन प्राप्ति, असमानता निवारण, धार्मिक आजादी, राजनैतिक अधिकार तथा बंधुत्व को बढ़ाना था। इस प्रकार मानवाधिकार के सार्वभौमिक घोषणा-पत्र का उद्देश्य स्वतंत्रता, समानता एवं बन्धुत्व के मूल्यों पर आधारित खुशहाल एवं कल्याणकारी मानव समाज की रचना करना है। यह सही है कि सार्वधिक मानवाधिकारों का दमन राज्य राजनैतिक कारणों से करता है। इसलिए यह सार्वभौमिक घोषणा राज्य के सापेक्ष मानवाधिकारों की मांग करता है। सार्वभौमिक घोषणा का एक अत्यन्त ही महत्वपूर्ण उद्देश्य मानवीय अधिकारों को संपूर्ण दुनिया के देशों में लागू एवं क्रियान्वित करना है जिसके प्रतिफल स्वरुप मानव जीवन कल्याणकारी बन सकता है।

1.4 मानवाधिकार के सार्वभौमिक घोषणा का स्वरुप

मानवाधिकार के सार्वभौमिक घोषण के स्वरुप का जब हम वर्णन, वर्गीकरण करते हैं तो पाते हैं कि यह चार प्रकार की प्रकृति को धारण करता है।

1. **राजनैतिक एवं सिविल अधिकार स्वरुप:** सार्वभौमिक घोषणा के अधिकांश अनुच्छेद राज्य एवं नागरिकों के मध्य अधिकारों का सीमांकन तो करता है दूसरी तरफ राज्य की अन्तिम सत्ता नागरिकों में अन्तर्निहित भी करता है। राजनैतिक अधिकार यह उपबन्ध करते हैं कि किसी भी व्यक्ति को भाषा, क्षेत्र, नस्ल, अथवा लिंग के आधार पर राजनीतिक गतिविधियों में भाग लेने से नहीं रोका जा सकता है।
2. **सामाजिक एवं आर्थिक अधिकार :** सच्चे अर्थ में व्यक्ति का जीवन गरिमापूर्ण ढंग से सामाजिक एवं आर्थिक अधिकारों द्वारा ही व्यतीत किया जा सकता है। सार्वभौमिक घोषणा में व्यक्ति को पूर्ण रूप से सामाजिक एवं आर्थिक अधिकार प्रदान किये गये हैं। जिसके तहत व्यक्ति जिस समाज में रहता है उसमें स्वतंत्रता एवं समानतापूर्वक सामाजिक गतिविधियों में भाग ले सकता है। वहीं आर्थिक अधिकार इस बात का उपबंध करता है कि व्यक्ति आजीविका की प्राप्ति, व्यापार स्वतंत्रतापूर्वक कर सकता है। जाति, नस्ल, क्षेत्र, भाषा एवं लैंगिक भिन्नता व्यक्ति के आर्थिक क्षेत्र में बाधा नहीं पहुँचा सकती।
3. **निषेधात्मक रुप :** सार्वभौमिक मानवाधिकार घोषणा अपने आप में निषेधात्मक स्वरुप का है। यह राज्य अथवा किसी संगठन को नागरिकों के मूल अधिकार जिसको नागरिकों ने राज्य को हस्तान्तरित नहीं किया और अपने पास 'सामाजिक समझौते' के समय रख लिया, को छान नहीं सकते। इस प्रकार सार्वभौम मानवाधिकार राज्य अथवा सक्षम संगठन को आमजन के जीवन पर अत्याचार, दमन, शोषण जैसे अमानवीय कृत्यों को करने से रोकता है।

4. **निर्देशात्मक रुप :** यह अत्यन्त ही विमर्श का विषय रहा है कि सार्वभौमिक मानवाधिकार घोषणा-पत्र दुनिया के सदस्यों-मुल्कों के लिए बाध्यकारी प्रसंविदा प्रदान करता है या निर्देशात्मक अनुदेशन। दुनिया के सभी सदस्य देशों के संविधान में मानवाधिकार को किसी न किसी रुप में जगह मिली है। जिसके पीछे यू.एन.ओ. द्वारा घोषित सार्वभौमिक अधिकार प्रमुख माना जाता है। इस प्रकार सार्वभौमिक घोषणा का यह स्वरूप बाध्यकारी प्रतीत होता है। पर यूएनओ के सार्वभौमिक घोषणा को दुनिया के पृथक-पृथक देश अपने-अपने तरिके से परिभाषित करते हैं और उसे अपने संविधान में जगह प्रदान करते हैं। इस प्रकार सार्वभौमिक घोषणा मानवाधिकार के संदर्भ में दिशा प्रदान करता है जिसके कारण यह निर्देशात्मक रुप धारण करता है।

1.5 मानवाधिकारों के सार्वभौम घोषणा का प्रभाव

दुनिया में मानवाधिकार के सार्वभौम घोषणा के प्रभाव को देखा जाये तो इसके दो रुप दिखते हैं-

1. **सकारात्मक प्रभाव**
2. **नकारात्मक प्रभाव**

1. **सकारात्मक प्रभाव** : मानवाधिकार के सार्वभौम घोषणा को यदि देखा जाये तो इसने व्यापक प्रभाव पूरी दुनिया में सकरात्मक ढंग से डाला है। उपनिवेशावाद के खात्मे के बाद पूरी दुनिया में लोकतांत्रिक व्यवस्था कायम हुई जिसके कारण संविधानवाद का जन्म हुआ। यह प्रक्रिया द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद घट रही थी। इसी समय संयुक्त राष्ट्र संघ की स्थापना एवं सार्वभौमिक घोषणा भी हुई। इसके बाद इस सार्वभौमिक घोषणा ने लगभग उन सभी राष्ट्रों के संविधानों को प्रभावित किया जो इस समय अस्तित्व में आए। वर्तमान समय में सार्वभौमिक घोषणा का गहन प्रभाव साकारात्मक रूप में निम्न क्षेत्रों पर पड़ा है- दुनिया के अधिकांश मुल्कों में जो संविधान बना है उसमें मौलिक अधिकार का उपबंध मानवाधिकार के प्रेरणा से किया गया है। किसी भी मुल्क में राजनीति का जो सिद्धान्त सुनिश्चित किया जाता है उसका प्रमुख उद्देश्य मानवाधिकार का संरक्षण व देखभाल ही होता है। इस प्रकार राज्य के व्यवहार पर सार्वभौम मानवाधिकार का प्रभाव देखा जा सकता है। आज पूरे विश्व में नागर समाज (Civil Society) का महत्व बढ़ रहा है। किसी भी मुल्क के लिए नागर समाज सरकार एवं जनसामान्य के मध्य सेतु बनाने का कार्य करता है। जब सरकार मानवाधिकार के मामले में गलत निर्णय लेती है तो यही नागर समाज सर्वप्रथम दबाव समूह के रुप में आगे आकर सरकार से कानून में बदलाव करने की मांग करता है। यह नागर समाज अत्यन्त ही सृजनात्मक, गतिशील तथा क्षमताशाली होता है। जिसके कारण इसे समाज का जागरुक अंग कहा जाता है। इसके लिए सार्वभौम घोषणा, मौलिक अधिकारों की प्राप्ति एवं सरंक्षण हेतु मानदण्ड प्रस्तुत करता है। दुनिया में जब कोई बड़ा देश कमजोर देश पर किसी प्रकार का दबाव, युद्ध अथवा पाबन्दियों के द्वारा लगाता है तो वहां पर मानवाधिकार की रक्षा के लिए कमजोर राष्ट्र संयुक्त राष्ट्र संघ की शरण में जाता है। इस प्रकार अंतर्राष्ट्रीय राजनीति में शक्ति सन्तुलन कायम करने में सार्वभौम मानवाधिकार अग्रणी भूमिका निभाता है।
2. **नकारात्मक प्रभाव** : मानव जीवन की यह कठोर विडम्बना है कि वह विचारों एवं आदर्शों का जो भी घरौंदा बनाता है उस घरौंदे में कुछ न कुछ कमी रह ही जाती है या उसका गलत कामों में प्रयोग

करने लगता है। इस प्रकार देखा जाय तो मानवाधिकार के सार्वभौमिक घोषणा का बुरा प्रभाव तो प्रत्यक्ष रुप में नहीं पड़ा है पर इसका राज्य, संगठन एवं संघ अपने -अपने लाभ के लिए राजनीतिक रंग देकर गलत कार्य करते हैं। जैसे अमेरिका एवं यूरोपीय देश मानवाधिकार के नाम पर खाड़ी एवं अफ्रीकी देशों में प्रकृतिक संसाधनों की प्राप्ति हेतु राजनीति करते हैं।

1.6 भारत और सार्वभौम घोषणा

भारत के संविधान पर सार्वभौम घोषणा का दूरगामी एवं गहरा प्रभाव पड़ा है। क्योंकि ऐसे अनेक मौलिक अधिकार जो भारतीय संविधान में प्रवर्तित है, वह सार्वभौम घोषणा में भी दिये गये हैं या उसके समतुल्य हैं। इस संबंध में जो समतुल्यता है वह निम्न है :

क्रमांक	अधिकार	भारतीय संविधान	सार्वभौम घोषणा
1	विधि के समक्ष समता	अनुच्छेद 14	अनुच्छेद 7
2	विभेद प्रतिषेध	अनुच्छेद 15(1)	अनुच्छेद 7 (2)
3	लोक नियोजन में समता	अनुच्छेद 16(1)	अनुच्छेद 7 (2)
4	अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता	अनुच्छेद 19(1) क	अनुच्छेद 19
5	सम्मेलन का अधिकार	अनुच्छेद 19(1) ख	अनुच्छेद 20 (1)
6	संघ बनाने की स्वतंत्रता	अनुच्छेद 19(1) ग	अनुच्छेद 23 (4)
7	परिवहन का अधिकार	अनुच्छेद 19(1) घ	अनुच्छेद 13 (8)
8	संपत्ति का अधिकार	अनुच्छेद 19(1) च	अनुच्छेद 17 (7)
9	कार्योत्तर विधि से संरक्षण	अनुच्छेद 20(1)	अनुच्छेद 11 (2)
10	प्राण का अधिकार	अनुच्छेद 21	अनुच्छेद 9
11	मानव दुर्व्यापार	अनुच्छेद 23	अनुच्छेद 4

ज्ञान शांति मैत्री

इस प्रकार स्पष्ट होता है कि भारतीय संविधान के अधिकांश मौलिक अधिकार सार्वभौम घोषणा में तो मिलता ही है। इसके अतिरिक्त भी इसमें सार्वभौम घोषणा का दायरा एवं गहराई अधिक है।

1.7 मानव अधिकारों की विश्व घोषणा

1. सभी मानव प्राणी जन्म से ही स्वतंत्र तथा गरिमा और अधिकारों में बराबर हैं। उनमें विचार शक्ति तथा अन्तश्चेतना होती है और उन्हें एक-दूसरे के साथ भाई-चारे की भावना से काम करना चाहिए।
2. इस घोषणा में शामिल सभी अधिकारों और स्वतंत्रताओं का हक हर किसी को नस्ल, रंग, लिंग, भाषा,धर्म, राजनीतिक या अन्य मत, राष्ट्रीय या सामाजिक मूल, संपत्ति, जन्म या हैसियत का अन्य कोई आधार जैसे किसी भी तरह के भेदभाव के बगैर है।इसके अलावा, जिस भी देश या भूखंड के किसी भी व्यक्ति का सम्बन्ध है, भले ही वह स्वतंत्र हो, न्यास हो, गैर-स्वशासी या प्रभुसत्ता की किसी भी सीमा के तहत हो, उसके साथ उ स देश या भूखंड की राजनीतिक, न्यायिक या अन्तर्राष्ट्रीय हैसियतके आधार पर कोई भेदभाव नहीं किया जायेगा।

3. प्रत्येक व्यक्ति को जीने का, स्वतंत्रता का और व्यक्तिगत सुरक्षा का अधिकार है।
4. किसी को गुलाम या बेगार के रुप में नहीं रखा जायेगा; गुलामी और बेगारी प्रथा के सभी रुपों को प्रतिबंधित किया जायेगा।
5. किसी के साथ अत्याचार या निर्दयता अथवा क्रूर, अमानवीय या गरिमाहीन व्यवहार नहीं किया जायेगा न इस तरह की सजा किसी को दी जायेगी।
6. प्रत्येक व्यक्ति को कानून के समक्ष हर कहीं व्यक्ति के रुप में मान्यता का अधिकार है।
7. कानून के सम्मुख सभी बराबर हैं और सभी को बिना किसी भेदभाव के कानून के सामन संरक्षण का अधिकार है। सभी को इस घोषणापत्र का उल्लघंन कर किये जानेवाले किसी भी भेदभाव के खिलाफ और ऐसे किसीभेदभाव को प्रोत्साहित करने के खिलाफ समानसंरक्षण का अधिकार है।
8. कानून या संविधान द्वारा प्रदत्त मौलिक अधिकारों के उल्लंघन पर हरएक को सक्षम राष्ट्रीय न्यायाधिकरण द्वारा प्रभावी उपचार का अधिकार है।
9. किसी को भी निरंकुश ढंग से न गिरफ्तार किया जायेगा, न हिरासत में लिया जायेगा और न निर्वासित किया जायेगा।
10. प्रत्येक व्यक्ति को अपने अधिकारों और दायित्वों के निर्धारण में और अपने खिलाफ किसी भी प्रकार के आपराधिक आरोप पर एक स्वतंत्र और निष्पक्ष न्यायाधिकरण द्वारा न्यायपूर्ण सार्वजनिक सुनवाई का पूरी तरह समान अधिकार है।
11. प्रत्येक व्यक्ति को किसी दंड्य अपराध के आरोप में तब तक निर्दोष माने जाने का अधिकार है, जब तक उस पर ऐसे किसी सार्वजनिक मुकदमे में कानून के तहत अपराध साबित न हो जाये, जिसमें उसे अपने बचाव के लिए सभी आवश्यक गारंटियॉं हों।
12. किसी को भी ऐसा कोई कार्य करने या न करने के लिए, जो उस घटना के वक्त राष्ट्रीय या अंतर्राष्ट्रीय विधि के तहत दंड्य नहीं था, किसी दंड्य अपराध का दोषी नहीं माना जायेगा। न ही उस पर, जिस समय वह अपराध हुआ, उस समय लागू जुर्माने से अधिक जुर्माना आरोपित किया जायेगा।
13. किसी भी व्यक्ति की एकान्तता(प्राइवेसी), परिवार, घर या पत्राचार में मनमाना दखल नहीं दिया जायेगा, न ही उसकी प्रतिष्ठा और सम्मान को चोट पहूँचाई जायेगी। ऐसे किसी दखल या आक्रमण के खिलाफ हरएक को कानून का संरक्षण पाने का अधिकार है।
14. प्रत्येक व्यक्ति को राज्य की सीमाओं के भीतर निवास करने का और घूमने-फिरने की स्वतंत्रताका अधिकार है।
15. प्रत्येक व्यक्ति को अपने देश सहित कोई भी देश छोड़ने और अपने देश लौटने का अधिकार है।
16. प्रत्येक व्यक्ति को उत्पीड़न से बचने के लिए दूसरे देशों में शरण चाहने और उसका उपभोग करने का अधिकार है।
17. यह अधिकार उन स्थितियों में लागू नहीं होगा, जिसमें वास्तविक रुप से गैर-राजनीतिक अपराधों के कारण संयुक्त राष्ट्र के सिद्धांतो और उद्दश्यों के विपरीत कार्य करने पर मुकदमा कायम किया गया हो।
18. प्रत्येक व्यक्ति को राष्ट्र का नागरिक बनने का अधिकार है।

ज्ञान शांति मैत्री

19. किसी को भी मनमाने तरीके से न तो उसकी राष्ट्रीयता से वंचित किया जायेगा न ही अपनी राष्ट्रीयता बदलने के अधिकार से वंचित किया जायेगा।

20. पूर्ण उम्र के पुरुषों और स्त्रियों को नस्ल, धर्म या राष्ट्रीयता की किसी सीमा से बाधित हुए बिना विवाह करने और परिवार बसाने का अधिकार है। विवाह से पूर्व, विवाह के दौरान और विवाह विच्छेद के बाद उन्हें समहोंगे।

21. विवाह दोनों पक्षों की पूर्ण और स्वतंत्र सहमति के आधारपर ही होगा।

22. परिवार समाजकी प्राकृतिक और बुनियादी समूह इकाई है और उसे समाज तथा राज्य का संरक्षण पाने का अधिकार है।

23. हरएक को अकेले तथा अन्यों के साथ निजी संपत्ति रखने का अधिकार है।

24. किसी को मनमाने तरीके से उसकी संपत्ति से वंचित नहीं किया जायेगा।

25. हरएक को विचारों, अंतश्चेतना और धर्म की स्वतंत्रता का अधिकार है; इस अधिकार में अपना धर्म और आस्था बदलने की स्वतंत्रता शामिल है और अकेले या अन्यों के साथ सार्वजनिक रुप से या एकांत में अपने धर्म या आस्था को शिक्षा, प्रथा, पूजा और परिपालन में अभिव्यक्त करने की स्वतंत्रता शामिल है।

26. हरएक को अपना मत रखने और उसकी अभिव्यक्ति करने की स्वतंत्रता का अधिकार है। इस अधिकार में बिना दखल के अपना मत रखने तथा किसी भी माध्यम के जरिये और सीमाओंसे परे सूचनाएँ और विचार चाहने, ग्रहण करने तथा प्रदान करने का अधिकार शामिल है।

27. हरएक को शांतिपूर्वक एकत्रित होने और संघ बनाने का अधिकार है।

28. किसी को भी किसी संघ से सम्बद्ध होने के लिए मजबूर नहीं किया जा सकता।

29. प्रत्येक व्यक्ति को, प्रत्यक्ष रुप से अथवा स्वतंत्रतापूर्वक चुने गये प्रतिनिधियों के जरिये, अपअने देश की सरकार में हिस्सा लेने का अधिकार है।

30. हरएक को अपने देश की सार्वजनिक सेवाओं से समान रुप से लाभान्वित होने का अधिकार है

31. सरकार की शक्ति का आधार जन इच्छा होगी। यह इच्छा समय-समय पर होनेवाले ईमानदार चुनावों में अभिव्यक्त की जायेगी, जो समान और बालिग मताधिकार के आधार पर होंगे तथा गुप्त मतदान या ऐसी ही किसी स्वतंत्र मतदान प्रक्रिया द्वारा कराये जायेंगे।

32. समाज का सदस्य होने के नाते प्रत्येक व्यक्ति को सामाजिक सुरक्षाका अधिकार है। उसे अपने राज्य के संसाधनों और संगठन के अनुसार तथा राष्ट्रीय प्रयास एवं अंतर्राष्ट्रीय सहयोग के जरिये अपनी गरिमा तथा अपने व्यक्तित्व के स्वतंत्र विकास के लिए अनिवार्य आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक अधिकारों को साकार करने का अधिकार है।

33. प्रत्येक व्यक्ति को काम करने का, रोजगार के स्वतंत्र चुनाव का, काम की उचित और अनुकूल स्थितियों का तथा बेरोजगारी के खिलाफ संरक्षण का अधिकार है।

34. प्रत्येक व्यक्ति को बिना किसी भेदभाव के समान काम के लिए समान वेतन पाने का अधिकार है।

35. प्रत्येक व्यक्ति को, जो काम करता है, उचित और अनुकूल पारिश्रमिक का अधिकार है, जिससे उसका और उसके परिवार का मानवीय गरिमा के साथ जीवन यापन हो सके और अगर आवश्यक पड़े तो इसकी न्यूनता-पूर्ति सामाजिक संरक्षण के अन्य माध्यमों द्वारा हो।

36. प्रत्येक व्यक्ति को अपने हितों के संरक्षण के लिए श्रमिक संगठन बनाने और उसमें शामिल होने का अधिकार है।

37. हरएक को कार्य घंटों की उचित सीमा और सवेतन नियतकालीन अवकाश सहित आराम और फुरसत पाने का अधिकार है।

38. प्रत्येक व्यक्ति को भोजन, कपड़ा, मकान और चिकित्सा सुविधा तथा आवश्यक सामाजिक सेवाओं सहित स्वयं के और परिवार के स्वास्थ्य तथा कल्याण के लिए पर्याप्त जीवन स्तर का अधिकार है। साथ ही उसे बेरोजगारी, बीमारी, विकलांगता, वैधव्य, बुढ़ापेया उसके नियंत्रण से बाहर की किसी अन्य स्थिति में जीविका में बाधा आने पर सुरक्षा पाने का अधिकार है।

39. मातृत्व और शैशवावस्था विशेष देखभाल और सहायता पाने के अधिकार हैं। सभी बच्चों को, चाहे वे वैध हों या अवैध, एक जैसा सामाजिक संरक्षण दिया जायेगा।

40. हरएक को शिक्षा का अधिकार है। कम से कम प्रारंभिक और बुनियादी चरणों में शिक्षा नि:शुल्क होगी। बुनियादी शिक्षा अनिवार्य होगी। तकनीकी और व्यावसायिक शिक्षा सामान्यत: उपलब्ध करायी जायेगी और योग्यता के आधार पर उच्च शिक्षा तक सभी की समान पहुँच होगी।

41. शिक्षा का लक्ष्य मानव व्यक्तितव का पूर्ण विकास और मानव अधिकारों तथा बुनियादी स्वतंत्रताओं के सम्मान को मजबूती देना होगा। यह सभी देशों तथा नस्लीय और धार्मिक समूहों के बीच समझ, सहिष्णुता और मैत्री को बढ़ावा देगी और शांति बरकरार रखने के लिए संयुक्त राष्ट्र संघ की गतिविधियों को आगे बढ़ायेगी।

42. माता-पिता को यह चुनने का प्राथमिक अधिकार होगा कि वे अपने बच्चों को किस तरह की शिक्षा दिलाना चाहते हैं।

43. हरएक को समुदाय के सांस्कृतिक जीवन में स्वतंत्रता के साथ भाग लेने, कलाओं का आनंद लेने और वैज्ञानिक प्रगति तथा उसके लाभ में हिस्सेदारी करने का अधिकार होगा।

44. हरएक को अपने द्वार सृजित किसी भी वैज्ञानिक, साहित्यिक और कलात्मक उत्पादन से प्राप्त नैतिक और भौतिक हितों के संरक्षण का अधिकार है।

45. प्रत्येक व्यक्ति को ऐसी सामाजिक और अंतर्राष्ट्रीय व्यवस्था का अधिकार है, जिसमें इस घोषणा में अभिव्यक्त अधिकारों और स्वतंत्रताओं को पूरी तरह हासिल किया जा सकता है।

46. प्रत्येक व्यक्ति के उस समुदाय के प्रति कर्तव्य हैं, जिसमें उसके व्यक्तित्व का स्वतंत्र और पूर्ण विकास संभव है।

47. अपने अधिकारों और स्वतंत्रता के इस्तेमाल में किसी भी व्यक्ति पर कानून द्वारा निर्धारित ऐसी हदें ही लगायी जायेंगी, जिनसे अन्य व्यक्तियों की स्वतंत्रताओं और अधिकारों की उचित मान्यता तथा सम्मान का उद्देश्य पूरा हो और एक लोकतांत्रिक समाज में नैतिकता, जन व्यवस्था और सामान्य कल्याण की उचित आवश्यकताएँ पूरी हों।

48. इन अधिकारों और स्वतंत्रताओं का इस्तेमाल किसी भी स्थितिमें संयुक्त राष्ट्र संघ के सिद्धांतों और उद्देश्यों के विपरीत नहीं किया जा सकेगा।

49. इस घोषणा की किसी भी बात की ऐसी व्याख्या नहीं की जा सकती, जिसका अर्थ यह निकलता हो कि किसी राज्य, समूह या व्यक्ति को इस घोषणा में निहित किसी भी अधिकार या स्वतंत्रता को नष्ट करने के उद्देश्य से किसी गतिविधि में भाग लेने या कोई काम करने का अधिकार है।

1.8 सारांश

आज मानवाधिकार को राज्य के दमन से बचाने की चुनौतियां बढ़ रही है क्योंकि लगातार राज्य शक्तिशाली होता जा रहा है। इसके पीछे जनता का राज्य पर बढ़ती निर्भरता दर प्रमुख कारण है। देखा जाये तो सार्वभौमिक घोषणा राज्य के कर्त्तब्यों के साथ-साथ उसके सीमाओं का भी सीमांकन करता है। आज पूरी दुनिया में हिंसात्मक गतिविधियां की जो दर है उसमें और वृद्धि होने की संभावना है यदि सार्वभौमिक घोषणा नहीं रहती तो। सार्वभौम घोषणा पूरी दुनिया के मानव जाति को एक खाके में जीने की अनुक्रमिका प्रदान करता है।

भारत एक लोकतांत्रिक देश के साथ-साथ अधिक जनसंकुलता एवं सामाजिक विविधता को धारण करता है जिसके कारण यहाँ पर मानवाधिकार के संरक्षण हेतु हमेश संविधान एवं नीति नियंताओं के समक्ष चुनौतियां होती है। अलग-अलग समूह एवं समुदाय की सामाजिक एवं सांस्कृतिक आस्थाएं एवं मान्यताएं पृथक होने के कारण राष्ट्रीय संदर्भ में सार्वभौमिक नियम बनाना आसान कार्य नहीं होता है। इसलिए सार्वभौम मानवाधिकार का सहारा लेना नीति-नियंताओं के लिए आवश्यक हो जाता है

1.9 बोध प्रश्न

प्रश्न:1- मानवाधिकार केसार्वभौमिक घोषणापत्र पर विस्तारपूर्वक लिखें।

प्रश्न:2- मानवाधिकार की सार्वभौमिक घोषणाकीबुनियादी प्रेरणा क्या है।

1.10 उपयोगी एवं संदर्भ पुस्तकें

- आचार्य, नंदकिशोर. (2003). मानवधिकार के तकाजे. बीकानेर:वाग्देवी प्रकाशन.
- शर्मा, सुभाष. (2009). भारत में मानवधिकार. नई दिल्ली:नेशनल बुक ट्रूस्ट.
- उपाध्याय, जय जय राम. (1999). मानव अधिकार. इलाहाबाद: सेंट्रल लॉ एजेंसी.
- मानवाधिकार शिक्षण प्रतिष्ठान (2009). मानवाधिकार : एक परिचय. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन.

ज्ञान शांति मैत्री

इकाई 2: आर्थिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक अधिकारों पर अंतरराष्ट्रीय प्रसंविदा
(International Covenant or Economic, Social and Cultural Rights)

इकाई की रूपरेखा

2.1 उद्देश्य
2.2 प्रस्तावना
2.3 आर्थिक, सामाजिक तथा सांस्कृतिक अधिकारों पर अंतरराष्ट्रीय प्रसंविदा
2.4 नागरिक तथा राजनैतिक अधिकारों पर अंतरराष्ट्रीय प्रसंविदा
2.5 सभी प्रकार के नस्ली विभेदों के उन्मूलन पर अंतरराष्ट्रीय अभिसमय
2.6 विकास के अधिकार संबंधी घोषणा
2.7 वियाना घोषणा 1993
2.8 सारांश
2.9 बोध प्रश्न
2.10उपयोगी एवं संदर्भ पुस्तकें

2.1 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के उपरांत आप निम्नलिखित में सक्षम हो सकेंगे-

1. मानवाधिकार के आर्थिक, सामाजिक तथा सांस्कृतिक अधिकारों पर अंतरराष्ट्रीय प्रसंविदा का उद्देश्य समझने में;
2. मानवाधिकार की नागरिक तथा राजनैतिक अधिकारों पर अंतरराष्ट्रीय प्रसंविदा को समझने में।

2.2 प्रस्तावना

सन् 1948 में स्वीकृत मानवाधिकारों की सार्वभौमिक घोषणा का पल्लवन दो अलग-अलग प्रसंविदाओं में हुआ- आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक अधिकारों पर अंतरराष्ट्रीय प्रसंविदाओं में हुआ- आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक अधिकारों पर अंतरराष्ट्रीय प्रसंविदा एवं नागरिक तथा राजनैतिक अधिकारों पर अंतरराष्ट्रीय प्रसंविदा।

2.3आर्थिक, सामाजिक तथा सांस्कृतिक अधिकारों पर अंतरराष्ट्रीय प्रसंविदा

16 दिसंबर, 1966 को संयुक्त राष्ट्र की महासभा द्वारा पारित तथा 3 जनवरी, 1976 से प्रभावी आर्थिक, सामाजिक तथा सांस्कृतिक अधिकारों पर अंतरराष्ट्रीय प्रसंविदा के पांच उद्देश्य हैं:-

(क) संयुक्त राष्ट्र संघ अधिकार-पत्र में घोषित सिद्धांतों के अनुरूप,मानव परिवार के सभी सदस्यों की सहज गरिमा तथा समान एवं अहरणीय अधिकारों की स्वीकृति विश्व में स्वतंत्रता, न्याय एवं शांति की आधारशिला है।

(ख) ये अधिकार व्यक्ति की सहज गरिमा से उदभूत होते हैं;

(ग) मानवाधिकारों की सार्वभौमिक घोषणा के अनुरूप स्वतंत्र मानव प्राणियों द्वारा भय एवं अभाव से मुक्ति की स्थिति के उपभोग का आदर्श तभी प्राप्त हो सकता है जब ऐसी परिस्थितियां उत्पन्न कर दी जाएं जिनमें प्रत्येक व्यक्ति आर्थिक, सामाजिक तथा सांस्कृतिक अधिकारों तथा साथ ही नागरिक एवं राजनैतिक अधिकारों का उपभोग कर सके।

(घ) संयुक्त राष्ट्र संघ अधिकार-पत्र के अधीन राज्यों पर मानवाधिकारों तथा स्वतंत्रताओं के प्रति सार्वभौमिक सम्मान तथा उसके पालन को बढ़ावा देने का दायित्व है; तथा

(ङ) व्यक्ति पर, जिसके अन्य व्यक्तियों के प्रति तथा अपने समुदाय के प्रति कुछ कर्तव्य हैं, यह उत्तरदायित्व है कि वह इस प्रसंविदा में मान्य अधिकारों को बढ़ावा देने तथा उनका पालन किए जाने के लिए प्रयत्न करें।

इस प्रसंविदा के विभिन्न अनुच्छेदों में कई मानवाधिकारों का प्रावधान इस प्रकार क्रिया गया है:

1. सभी जन-समाजों को आत्मनिर्णय का अधिकार है जिसके बल पर वे अपनी राजनैतिक स्थिति तथा आर्थिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक विकास तय करते हैं। किसी –जन-समाज को जीविका के साधनों से वंचित नहीं किया जा सकता। (अनुच्छेद -1)
2. प्रत्येक पक्षकार राज्य इसमें बताए अधिकारों पर रंग, लिंग, भाषा, धर्म, संपत्ति, जन्म या अन्य किसी भेदभाव के बिना अमल करने का वचन देते हैं। (अनुच्छेद -2)
3. प्रत्येक पक्षकार राज्य वचन देते हैं कि सभी पुरूषों और स्त्रियों को इस प्रसंविदा में बताए गए सभी आर्थिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक अधिकारों का उपयोग करने का समान अधिकार होगा तथा सिर्फ कानून के द्वारा मर्यादाएं निर्धारितकी जा सकेंगी। (अनुच्छेद -3,4)
4. प्रत्येक पक्षकार राज्य रोजगार चुनने तथा जीविका कमाने के अवसर प्राप्त करने के अधिकार को स्वीकार करते हैं। (अनुच्छेद -6)
5. प्रत्येक पक्षकार राज्य स्वीकार करते हैं कि प्रत्येक व्यक्ति को काम करने की निम्नलिखित न्यायसंगत एवं अनुकूल परिस्थितियों के उपभोग का अधिकार है (अनुच्छेद -7) :
   (क)स्त्रियों व पुरूषों के लिए समान काम के लिए समान वेतन तथा उचित वेतन।
   (ख)सुरक्षित एवं आरोग्यपूर्ण कार्य-परिस्थितियां।
   (ग) सिर्फ वरीयता एवं योग्यता के आधार पर अपने रोजगार में उपयुक्त उच्चतर स्तर तक प्रोन्नति पाने का अवसर।
   (घ) विश्राम, अवकाश तथा कार्य के घंटों की उचित सीमा, समय-समय पर संवैधानिक छुट्टियां तथा सार्वजनिक छुट्टियों के दिन के लिए पारिश्रमिक की व्यवस्था।
6. प्रत्येक पक्षकार राज्य निम्नलिखित बातें सुनिश्चित करने का दायित्व लेते हैं (अनुच्छेद -8) :-
   अपने आर्थिक-सामाजिक हितों की रक्षा के लिए प्रत्येक व्यक्ति को श्रमिक संघ बनाने और अपनी पंसद के श्रमिक संघ के शामिल होने का अधिकार है। उसे हड़ताल करने का अधिकार है मगर देश

के कानून की मर्यादा के तहत। श्रमिक संघों पर राष्ट्रीय सुरक्षा एवं सार्वजनिक शांति व्यवस्था या दूसरों के अधिकारों की रक्षा के लिए आवश्यक पाबंदियां लाई लगाई जा सकती हैं।

7. प्रत्येक पक्षकार राज्य प्रत्येक व्यक्ति के सामाजिक सुरक्षा (बीमा सहित) के अधिकार को स्वीकार करते हैं। (अनुच्छेद -9)

8. प्रत्येक पक्षकार राज्य परिवार की व्यापकतम सुरक्षा एवं सहायता का वचन देते हैं- विशेषकर उसे बसाने, बच्चों के पालन-पोषण, शिक्षा-दीक्षा के समय। दोनों की स्वतंत्र सहमति से विवाह हो। जन्म देने के पहले ओर बाद उचित अवधि तक माँ को विशेष संरक्षण मिले; इस दौरान कामकाजी महिला को सवैतनिक अवकाश एवं सामाजिक सुरक्षा का लाभ मिले। राज्यों द्वारा उम्र-सीमा निर्धारित करके कम उम्र के बच्चों को सवैतनिक रोजगार में लगाना निषिद्ध तथा कानूनन दंडनीय हो। (अनुच्छेद -10)

9. प्रत्येक व्यक्ति को अपने परिवार के समुचित जीवन-स्तर (पर्याप्त भोजन, वस्त्र, आवास) का अधिकार है। सभी पक्षकार राज्य सभी के भूख से मुक्त रहने के अधिकार को स्वीकार करते हैं तथा वे अंतरराष्ट्रीय सहयोग से पोषाहार के विषय में प्रसार, खाद्य पदार्थों के उत्पादन, परिरक्षण एवं वितरण में सुधार के लिए आवश्यक कदम उठाएंगे। (अनुच्छेद -11)

10. प्रत्येक व्यक्ति को शारीरिक एवं मानसिक स्वास्थ्य के उच्चतम प्राप्य स्तर का उपभोग करने का अधिकार है। इस बाबत प्रत्येक पक्षकार राज्य मातृ-मृत्यु दर व शिशु-मृत्यु दर में कमी लाने, पर्यावरणीय तथा औद्योगिक स्वच्छता में सुधार लाने, महामारी, स्थानीय, व्यावसायिक एवं अन्य रोगों की रोकथाम, इलाज एवं नियंत्रण करने, और बीमार लोगों की चिकित्सा सेवा आदि के लिए आवश्यक कदम उठाएंगे। (अनुच्छेद -12)

11. पक्षकार राज्य प्रत्येक व्यक्ति के शिक्षा के अधिकारों को स्वीकार करते हैं जिससे वे स्वतंत्र समाज में प्रभावकारी ढंग से भाग ले सकें। शिक्षा सभी राष्ट्रों, नस्लों, धार्मिक समूहों के बीच आपसी सदभाव, सहिष्णुता एवं मित्रता बढ़ाएगी। प्राथमिक शिक्षा नि:शुल्क एवं अनिवार्य होगी। सभी प्रकार की माध्यमिक शिक्षा उचित तरीके से तथा क्रमिक रूप से नि:शुल्क व्यवस्था करके सबके लिए सुलभ एवं प्राप्य बनाई जाएगी। योग्यता के अनुसार उच्च शिक्षा सबको सुलभ कराई जाएगी। स्कूलों में छात्रवृत्तियों की संतोषजनक व्यवस्था कायम की जाएगी तथा शिक्षकों की स्थिति में सुधार किया जाएगा। माँ-बाप या अभिभावक अपने बच्चों की शिक्षा के लिए स्कूल चुनने के लिए स्वतंत्र होंगे। (अनुच्छेद -13)

12. पक्षकार राज्य प्रत्येक व्यक्ति के सांस्कृतिक जीवन में भाग लेने, वैज्ञानिक प्रगति व उसके प्रयोगों के लाभ का उपभोग करने, वैज्ञानिक, साहित्यिक या कलात्मक कृति के सृजन से नैतिक एवं भौतिक हिंतों का लाभ उठाने के अधिकार को स्वीकार करते हैं। राज्य इस अधिकार के कार्यान्वयन के लिए विज्ञान तथा संस्कृति के विकास व प्रयास के लिए आवश्यक कदम उठाएंगे तथा वैज्ञानिक अनुसंधान एवं रचनात्मक प्रवृत्ति के लिए अनिवार्य स्वतंत्रता का सम्मान करेंगे। (अनुच्छेद -14)

2.4 नागरिक एवं राजनैतिक अधिकारों पर अंतरराष्ट्रीय प्रसंविदा (International Covenant on Civil Political Right)

संयुक्त राष्ट्र संघ की महासभा द्वारा 16 दिसंबर, 1966 को पारित तथा 23 मार्च, 1976 से प्रभावी नागरिक एवं राजनैतिक अधिकारों पर अंतरराष्ट्रीय प्रसंविदा के उद्देश्य वही हैं जो आर्थिक, रामाजिक तथा सांस्कृतिक अधिकारों पर अंतरराष्ट्रीय प्रसंविदा के हैं। नागरिक एवं राजनैतिक अधिकारों पर अंतरराष्ट्रीय प्रसंविदा में मानवाधिकारों के निम्नलिखित मुख्य प्रावधान किए गए है:

1. सभी जन-समाजों को आत्मनिर्णय का अधिकार है और किसी जन-समाज को उसकी जीविका के साधनोंसे वंचित नहीं किया जा सकता। (अनुच्छेद -1)
2. प्रत्येक पक्षकार राज्य इस प्रसंविदा में दिए गए अधिकारोंका सम्मान करेगा तथा नस्ल, रंग, लिंग, भाषा, धर्म, राजनैतिक या अन्य मत राष्ट्रीय या सामाजिक मूल, संपत्ति, जन्म, या अन्य स्थिति के आधार पर कोई भेदभाव नहीं करेगा। राज्य स्वीकृत अधिकारों के उल्लंघन के निराकरण की विधि सम्मत न्यायिक/प्रशासनिक व्यवस्था करेगा। (अनुच्छेद -2)
3. पक्षकार राज्य नागरिक एवं राजनैतिक अधिकारों के उपभोग के मामले में स्त्रियों व पुरूषों के अधिकार में समानता सुनिश्चित करेंगे। (अनुच्छेद -3)
4. सार्वजनिक आपातकाल में राज्य प्रसंविदा के दायित्वों से मुक्त हो सकेंगे बशर्ते उसके कदम अंतरराष्ट्रीय कानून के अधीन अन्य दायित्वों से असंगत न हों और उनमें मात्र नस्ल, रंग, लिंग, भाषा, धर्म या सामाजिक मूल के आधार पर विभेद न किया जाए। (अनुच्छेद - 4)
5. प्रत्येक मानव प्राणी को जीवन का सहज अधिकार है जिसकी रक्षा कानून करेगा और किसी को मनमाने ढंग से जीवन से वंचित नहीं किया जाएगा। जहां मृत्युदंड कानून लागू है, वहां मृत्युदंड अत्यंत गंभीर अपराधों के लिए ही दिया जाएगा मगर मृत्युदंड के अभियुक्त को क्षमा या दंड के लघुकरण (कंयूटेशन) की याचना का अधिकार होगा।18 वर्ष से कम आयु के बच्चों को उनके अपराध के लिए मृत्युदंड नहीं दिया जाएगा। (अनुच्छेद -6)
6. किसी को भी यातना नहीं दी जाएगी और न किसी के साथ नृशंस, अमानवीय या अपमानजनक व्यवहार किया जाएगा। इसके अलावा किसी व्यक्ति पर उसकी सहमति के बिना कोई चिकित्सा विषयक या वैज्ञानिक प्रयोग नहीं किया जाएगा। (अनुच्छेद -7)
7. किसी को गुलाम बनाकर जैसी स्थिति में नहीं रखा जाएगा, हर प्रकार की दासता और दास-व्यापार निषिद्ध होगा। किसी से बेगार या बंधुओं श्रम नहीं लिया जाएगा। (अनुच्छेद -8)
8. प्रत्येक व्यक्ति को अपने शरीर की स्वतंत्रता ओर उसकी रक्षा का अधिकार है। किसी को भी मनमाने तौर पर गिरफ्तार या नजरबंद नहीं किया जाएगा। यदि किसी को किसी कानून के तहत गिरफ्तार किया जाता है तो उसके कारण व आरोपों की जानकारी उसे दी जाएगी तथा उसे न्यायाधीश के समक्ष शीघ्र पेश किया जाएगा। वह अभियुक्त उचित अवधि के अंदर मुकदमें की सुनवाई अन्यथा रिहाई का अधिकारी होगा। गैर-कानूनी तरीके से गिरफ्तारी करने पर अभियुक्त की मुआवजा पाने का अधिकार होगा। (अनुच्छेद -9)
9. स्वतंत्रता से वंचित लोगों की गरिमा का ख्याल करके उनके मानवीयतापूर्ण तथा सम्मानजनक व्यवहार किया जाएगा। असाधारण परिस्थितियों को छोड़कर विचारक वाले अभियुक्तों को

दोषसिद्ध कैदियों से अलग कर जाएगा तथा उनसे भिन्न व्यवहार किया जाएगा। बाल अभियुक्तों को वयस्क अभियुक्तों से अलग रखा जाएगा तथा उनकी उम्र के अनुरूप व्यवहार करके उन्हें यथाशीघ्र न्यायिक निर्णय के लिए पेश किया जाएगा। कैदियों के सुधार एवं पुनर्वास का प्रयास किया जाएगा। (अनुच्छेद -10)

10. प्रत्येक व्यक्ति को अपने देश में आने-जाने एवं बसने की तथा दूसरे देशों में जाने की स्वतंत्रता होगी मगर इस पर कानून के तहत राष्ट्रीय सुरक्षा, शांति-व्यवस्था, सार्वजनिक स्वास्थ्य या नैतिकता अथवा दूसरों के अधिकारों की रक्षा के लिए प्रतिबंध लगाया जा सकता है। किसी को अपने देश में प्रवेश करने के अधिकार से मनमाने तौर पर वंचित नहीं किया जाएगा। (अनुच्छेद -12)

11. स्वतंत्र एवं निष्पक्ष न्यायालयों एवं न्यायाधिकरणों के समक्ष सभी लोग समान होंगे तथा प्रत्येक अभियुक्त दोष सिद्ध होने तक निर्दोष माना जाएगा तथा उसे निम्नलिखित अधिकार होंगे। (अनुच्छेद -14)

(क) उसके खिलाफ क्या आरोप है और उसका आधार क्या है? इस संबंध में शीघ्र उसकी समझ में आने वाली भाषा में सूचित करना:

(ख)अपने बचाव के लिए तैयार करने तथा अपनी पसंद के वकील से संपर्क करने के लिए उसे पर्याप्त समय और सुविधाएं देना;

(ग) अनुचित विलंब के बिना विचारण (ट्रायल) शुरू करना;

(घ) उसकी उपस्थिति में मुकदमा चलाना और उसे व्यक्तिगत रूप से या अपनी पसंद के कानूनी सलाहकार की सहायता से अपना बचाव करने का अवसर देना;

(ङ) स्वयं के खिलाफ साक्ष्य देने या अपराध स्वीकार करने के लिए मजबूर न करना।

(च) बाल अभियुक्तों की उम्र तथा उनके पुनर्वास को प्रोत्साहन देने के लिए वांछनीयता का ख्याल रखा जाएगा।

12. कानून के समक्ष सभी को एक व्यक्ति के रूप में मान्यता मिलेगी तथा किसी की निजता, परिवार, घर या पत्र-व्यवहार में मनमाने तौर पर या गैर-कानूनी तरीके से हस्तक्षेप नहीं किया जाएगा और न उसके सम्मान व प्रतिष्ठापर गैर-कानूनी प्रहार किया जाएगा। प्रत्येक व्यक्ति को ऐसे हस्तक्षेप या प्रहार के विरूद्ध कानून की सूरक्षा का अधिकार है। (अनुच्छेद -16-17)

13. प्रत्येक व्यक्ति को विचार, अंत:करण और धर्म की स्वतंत्रता का अधिकार है। मगर धर्म या विश्वासों की अभिव्यक्ति पर कानून द्वारा मर्यादाएं लगाई जा सकती है। मां-बाप या अभिभावक को अपने बच्चों की धार्मिक या नैतिक शिक्षा अपने विश्वास के अनुरूप दिलाने का अधिकार हैं। (अनुच्छेद -18)

14. प्रत्येक व्यक्ति को मत रखने की और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता होगी मगर दूसरों के अधिकारों या प्रतिष्ठा के प्रति सम्मान के लिए अथवा राष्ट्रीय सुरक्षा या सार्वजनिक शांति व्यवस्था या सार्वजनिक स्वास्थ्य या नैतिक नियमों की हिफाजत के लिए कानून द्वारा मर्यादाएं लगाई जा सकती है। (अनुच्छेद -19)

15. युद्ध के हर तरह के प्रचार पर कानूनी निषेध होगा तथा राष्ट्रीय नस्ली या धार्मिक घृणा फैलाना कानून द्वारा निषिद्ध होगा। (अनुच्छेद -20)

16. प्रत्येक को शांतिपूर्ण सम्मेलन करने का अधिकार है मगर कानून के द्वारा राष्ट्रीय या सार्वजनिक सुरक्षा शांति-व्यवस्था, सार्वजनिक स्वास्थ्य या नैतिक नियमों के संरक्षण या दूसरों के अधिकारों की रक्षा के लिए प्रतिबंध लगाया जा सकता है। (अनुच्छेद -21)

17. प्रत्येक व्यक्ति को किसी संगठन में शामिल होने, श्रमिक संघ बनाने, उसमें भाग लेने का अधिकार है। (अनुच्छेद -22)

18. परिवार को समाज एवं राज्य द्वारा संरक्षण का अधिकार है। विवाह योग्य स्त्री-पुरूषों को स्वतंत्र एवं पूर्ण सहमति से विवाह करने और घर बसाने का अधिकार है। राज्य विवाह के संबंध में, विवाहित जीवन के दौरान और विवाह भंग होने के बाद दंपती के समान अधिकार व दायित्व सुनिश्चित करने के लिए कदम उठाएगा तथा विवाह भंग होने पर दंपती के बच्चे के संरक्षण के लिए आवश्यक व्यवस्था करेगा। (अनुच्छेद -23)

19. बिना किसी भेदभाव के प्रत्येक बच्चे को परिवार, समाज तथा राज्य से ऐसे उपाय की अपेक्षा का अधिकार है जो अवयस्क की सुरक्षा के लिए जरूरी है। जन्म के तुरंत बाद प्रत्येक बच्चे को पंजीकृत किया जाएगा तथा उसे एक नाम एवं राष्ट्रीयता का अधिकार है। (अनुच्छेद -24)

20. प्रत्येक नागरिक को प्रत्यक्ष के रूप में स्वयं अथवा स्वतंत्र रूप से निर्वाचित अपने प्रतिनिधियों के जरिए सरकारी मामलों में भाग लेने का अधिकार है। चुनावों में गुप्त मत देने या स्वयं चुने जाने का अधिकार है तथा सामान्यत: समानता के आधार पर अपने देश की सरकारी सेवा में प्रवेश करने का अधिकार है। (अनुच्छेद -25)

21. कानून के समक्ष सभी व्यक्ति समान हैं और बिना किसी भेदभाव के उन्हें कानून का संरक्षण प्राप्त करने का अधिकार है। कानून हर प्रकार के भेदभाव का निषेध करेगा। (अनुच्छेद -26)

22. जिन पक्षकार राज्यों में नृजातीय, धार्मिक या भाषागत अल्पसंख्यकों का अस्तित्व है, उनमें ऐसे अल्पसंख्यक समूहों के लोगों को अपने समूह के अन्य सदस्यों के साथ मिलकर अपनी संस्कृति, अपने धर्म को मानने और उसका आचरण करने या अपनी भाषा का प्रयोग करने के अधिकार से वंचित नहीं किया जाएगा। (अनुच्छेद -27)

ज्ञान शांति मैत्री

2.5 सभी प्रकार के नस्ली विभेदों के उन्मूलन पर अंतरराष्ट्रीय अभिसमय (International Convention on the Elimination of All Form of Racial Discrimination)

संयुक्त राष्ट्र संघ की महासभा ने 21 दिसंबर, 1965 को सभी प्रकार के नस्ली विभेदों के उन्मूलन पर अंतरराष्ट्रीय अभिसमय को अंगीकरण किया तथा 4 जनवरी, 1969 से यह प्रभावी हुआ। इसके उद्देश्य निम्नलिखित है।

(क) संयुक्त राष्ट्र संघ अधिकार-पत्र सभी मनुष्यों की सहज गरिमा और समानता के सिद्धांतों पर आधारित है, और इस अभिसमय के सभी पक्षकार राज्यों ने संयुक्त राष्ट्र संघ के एक प्रयोजन को, जो नस्ल, लिंग, भाषा या धर्म के आधार पर कोई विभेद बिना, सबके लिए मानवाधिकारों और मूल स्वतंत्रताओं के प्रति सम्मान और उनके अनुपालन को बढ़ावा तथा प्रोत्साहन देता है, सिद्ध करने के लिए इस संघ के सहयोग से संयुक्त रूप से और अलग-अलग प्रयत्न करने की प्रतिज्ञा की है;

(ख) मानवाधिकारों की सार्वभौमिक घोषणा में घोषित किया गया है कि सभी मनुष्य जन्म से स्वतंत्र तथा गरिमा व अधिकारों की दृष्टि से समान हैं, और प्रत्येक व्यक्ति किसी प्रकार के भेदभाव के बिना (विशेषकार नस्ल, रंग, या राष्टीय मूल पर आधारित भेदभाव के बिना) उस घोषणा में उल्लिखित सभी अधिकारों एवं स्वतंत्रताओं का अधिकारी है;

(ग) सभी मनुष्य कानून के समक्ष समान हैं, तथा किसी भी भेदभाव के खिलाफ और भेदभाव की उत्तेजना देने वाली कार्रवाई के खिलाफ कानून के समान संरक्षण के अधिकारी है;

(घ) संयुक्त राष्ट्र संघ ने उपनिवेशवाद और उससे जुड़े पृथक्करण और भेदभाव की निंदा की है, तथा 14 सितंबर, 1960 की औपनिवेशिक देशों तथा जन-समाजों को स्वतंत्रता देने से संबंधित घोषणा में उसने उपनिवेशों की शीघ्र और बिना शर्त समाप्त करने की आवश्यकता पर जोर दिया है, और उसका सत्यनिष्ठा के साथ ऐलान किया है।

(ङ) संयुक्त राष्ट्र संघ की सभी प्रकार के नस्ली भेदभावों की समाप्ति की 20 नवंबर, 1963 की घोषणा में विश्वभर में सभी प्रकार के नस्ली भेदभावों को शीघ्रता से मिटा देने और व्यक्ति की गरिमा के प्रति संवेदना तथा सम्मान सुनिश्चित करने की आवश्यकता पर बल दिया है;

(च) नस्ली भेदभाव पर आधारित श्रेष्ठता का सिद्धांत वैज्ञानिक दृष्टि से गलत, नैतिक दृष्टि से निंदनीय, सामाजिक दृष्टि से अन्यायपूर्ण और खतरनाक है, तथा उसके आधार पर कहीं भी सिद्धांत या व्यवहार में भेदभाव करना समीचीन नहीं है;

(छ) नस्ल, रंग, या नृजातीय मूल के आधार पर मनुष्य–मनुष्य के बीच भेदभाव करना राष्ट्रों के बीच मैत्रीपूर्ण एवं शांतिपूर्ण संबंधों के लिए बाधक है और ऐसा भेदभाव जन-समाजों के बीच शांति व सुरक्षा में तथा एक ही राज्य के अंदर साथ-साथ रहने वाले लोगों के बीच मेल-जोल में व्यवधान डाल सकता है;

(ज) नस्ली दीवारों की मौजूदगी किसी भी मानव समाज के आदर्शों के लिए सर्वथा अस्वीकार्य है;

(झ) इस बात से चिंतित होकर कि विश्व के कुछ क्षेत्रों में नस्ली भेदभाव व्यवहार में आज भी देखे जा सकते हैं और नस्ली श्रेष्ठता या घृणा पर आधारित रंगभेद, पृथक्करण या अलगाव की नीति जैसी सरकारी नीतियां चल रही हैं;

(ञ) विभिन्न नस्लों के बीच सदभावना को बढ़ावा देने तथा सभी प्रकार के नस्ली पृथक्करण एवं नस्ली भेदभाव से मुक्त एवं अंतरराष्ट्रीय समुदाय का निर्माण करने के उद्देश्य से सभी प्रकार के नस्ली भेदभावों को शीघ्रता से मिटाने तथा नस्लवादी सिद्धांतों एवं व्यवहारों को रोकने तथा उनका प्रतिरोध करने के लिए सभी उपाय करने हैं।

इस अभिसमय में निम्नलिखित मानवाधिकारों का उल्लेख है :

1. पक्षकार राज्य नस्ली भेदभाव, पृथक्करण एवं रंगभेद की निंदा करते हैं और बिना कोई विलंब किए सभी उपयुक्त उपायों से सभी प्रकार के नस्ली विभेद को समाप्त करने और सभी नस्लों के बीच सदभावना को बढ़ावा देने की नीति का पालन करने का वचन देते हैं। मगर परिस्थितियों का तकाजा होने पर सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक तथा अन्य क्षेत्रों में विशिष्ट नस्ली समूहों या उन समूहों के व्यक्तियों का पर्याप्त विकास और संरक्षण सुनिश्चित करने के लिए विशेष व ठोस कदम उठाएंगे

ताकिवे समूह या व्यक्ति मानवाधिकारों और मूल स्वतंत्रताओं का पूर्ण व समान उपभोग कर सकें। (अनुच्छेद -2, 3)

2. पक्षकार राज्य नस्ली, श्रेष्ठता या घृणा पर आधारित विचारों के तमाम प्रचार-प्रसार को, नस्ली विभेद को उत्तेजना देने वाली कार्रवाइयों को, और किसी अन्य रंग या नृजातीय मूल के किसी भी नस्ल या समूह के लोगों के खिलाफ हिंसा की सभी कार्रवाइयों और नस्लवादी प्रवृत्तियों को दी जाने वाली आर्थिक सहायता सहित किसी भी प्रकार की सहायता को कानून द्वारा दंडनीय अपराध घोषित करेंगे। राज्य किसी भी राष्ट्रीय या स्थानीय प्राधिकरण या संस्था को नस्ली भेदभाव को बढ़ावाया उकसावा देने की अनुमति नहीं देंगे। (अनुच्छेद -4)

3. पक्षकार राज्य सभी प्रकार के नस्ली विभेद पर निषेध लगाएंगे और उसे समाप्त कर देंगे, तथा नस्ल, रंग या राष्ट्रीय या नृजातीय मूल का कोई भेद किए बिना प्रत्येक वयक्ति के लिए कानून के समक्ष समानता का अधिकार सुनिश्चित करेंगे। (अनुच्छेद -5)

4. पक्षकार राज्य वचन देते हैं कि नस्ली विभेद को जन्म देने वाले पूर्वाग्रहों का निवारण करने के लिए तथा राष्ट्रीय व नस्ली या नृजातीय समूहों के बीच सदभावना, सहिष्णुता और मित्रता को बढ़ावा देने के लिए एवं संयुक्त राष्ट्र संघ अधिकार-पत्र, मानवाधिकारों की सार्वभौमिक घोषणा सभी प्रकार के नस्ली विभेद की समाप्ति संबंधी राष्ट्र की घोषणा और इस अभिसमय का प्रचार करने के लिए विशेष रूप से अध्यापन, शिक्षण, संस्कृति और सूचना के क्षेत्रों में वे अविलंब प्रभावकारी उपाये करेंगे। (अनुच्छेद -7)

2.6 विकास के अधिकार संबंधी घोषणा (Declaration on the Right Development)

विकास का अधिकार नया मानवाधिकार है। संयुक्त राष्ट्र संघ की महासभा ने 4 सितंबर, 1984 को इस घोषणा को अंगीकरण किया। यह भारत जैसे विकासशील देशों के लिए विशेष रूप से महत्वपूर्ण है। इसके मुख्य उद्देश्य निम्नलिखित हैं :

(क) आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक या मानवीय प्रकृति की अंतरराष्ट्रीय समस्याओं के समाधान में तथा नस्ल, लिंग, भाषा या धर्म के विभेद के बिना सबके लिए मानवाधिकारों और मूल स्वतंत्रताओं के प्रति सम्मान की भावना की बढ़ाने और प्रोत्साहन देने में अंतरराष्ट्रीय सहयोग की प्राप्ति के संबंध में संयुक्त राष्ट्र संघ अधिकार-पत्रके प्रयोजनों और सिद्धांतों को ध्यान में रखते हुए;

(ख) यह मानते हुए कि विकास एक व्यापक आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक एवं राजनैतिक प्रक्रिया है जिसका लक्ष्य विकास तथा तदजनित लाभों के उचित वितरण में संपूर्ण आबादी और सभी व्यक्तियों की स्वतंत्र व सार्थक भागीदारी के आधार पर उनके कल्याण की स्थिति में सतत सुधार है;

(ग) मानवाधिकार की सार्वभौमिक घोषणा की व्यवस्थाओं के अधीन प्रत्येक व्यक्ति ऐसी सामाजिक एवं अंतरराष्ट्रीय व्यवस्था का अधिकारी है जिसमें उक्त घोषणा में उल्लिखित अधिकार पूर्ण रूप से चरितार्थ हो सकें;

(घ) आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक अधिकार संबंधी अंतरराष्ट्रीय प्रसंविदा, तथा नागरिक और राजनैतिक अधिकार संबंधी अंतरराष्ट्रीय प्रसंविदा की व्यवस्थाओं को याद करते हुए;

(ङ) मनुष्य के समेकित विकास तथा सभी जन-समाजों की आर्थिक और सामाजिक प्रगति एवं विकास के संबंध में संयुक्त राष्ट्र संघ तथा उसकी विशिष्ट एजेंसियों के प्रासंगिक समझौतों, अभिसमयों, प्रस्तावों आदि को भी याद करते हुए;

(च) जन-समाजों के आत्म-निर्णय के अधिकार को याद करते हुए;

(छ) मानवाधिकारों से संबंधित अंतरराष्ट्रीय प्रसंविदाओं की प्रासंगिक व्यवस्थाओं का ख्याल रखते हुए जन-समाजों के अपनी प्राकृतिक संपत्ति और संसाधनों पर संपूर्ण प्रभूसत्ता का प्रयोग करने के अधिकार को याद करते हुए;

(ज) कि सभी मानवाधिकार और मूल स्वतंत्रताएं अविभाज्य तथा अंतर्निर्भर हैं तथा विकास को संवर्धित करने के लिए नागरिक, राजनैतिक, आर्थिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक अधिकारों के कार्यान्वयन को बढ़ावा व संरक्षण देने की और समान रूप से व अविलंब ध्यान दिया जाना चाहिए।

(झ) कि अंतरराष्ट्रिय शांति और सुरक्षा विकास के अधिकार को चरितार्थ करने के आवश्यक तत्व हैं;

(ञ) कि विकास एवं निरस्त्रीकरण के बीच घनिष्ठ संबंध है, और निरस्त्रीकरण के क्षेत्र में प्रगति से विकास के क्षेत्र में प्रगति को काफी बढ़ावा मिलेगा, तथा निरस्त्रीकरण से संसाधयनों की जो बचत हो, उसका उपयोग सभी जन-समाजों तथा विशेष तौर पर विकासशील देशोंके जन-समाजों के आर्थिक एवं सामाजिक विकास में किया जाना चाहिए।

(ट) कि व्यक्ति विकास-प्रक्रिया का केंद्र है, इसलिए विकास की नीति को व्यक्ति के विकास का मुख्य भागीदार तथा लाभ का भी भागी बनाना चाहिए।

(ठ) कि जन-समाजों और व्यक्तियों के विकास के लिए अनुकूल परिस्थितियों का सृजन उनके राज्यों का प्राथमिक दायित्व है।

(ड) कि मानवाधिकारों को बढ़ावा देने और उनके संरक्षण के लिए अंतरराष्ट्रीय स्तर पर किए जाने वाले प्रयासों के साथ-साथ एक नई अंतरराष्ट्रीय अर्थव्यवस्था स्थापित करने के प्रयत्न भी किए जाने चाहिए;

(ढ) कि विकास का अधिकार एक अहरणीय अधिकार है तथा विकास के अवसर की समानता राष्ट्रों व राष्ट्रों के घटक व्यक्तियों दोनों का विशेषाधिकार है।

ज्ञान शांति मैत्री

इस घोषणा में निम्नलिखित मानवाधिकार शामिल है:

1. विकास का अधिकार एक अहरणीय है जिससे व्यक्ति के रूप में प्रत्येक मनुष्य तथा सभी जन-समाज आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक और राजनैतिक विकास में जिसमें सभी मानवाधिकार एवं मूल स्वतंत्रताएं पूर्ण रूप से फलीभूत की जा सकती हैं, भाग लेने व योग देने तथा उपभोग करने के अधिकार हैं। विकास के मानवाधिकार का अर्थ जन-समाजों के आत्मनिर्णय के अधिकार हैं। विकास के मानवाधिकार का अर्थ जन-समाजों के आत्मनिर्णय के अधिकार को भी पूर्णत: चरितार्थ किया जाना है। (अनुच्छेद -1)
2. व्यक्ति विकास का मुख्य विषय है तथा उसे विकास अधिकार में सक्रिय भागीदार व उसका लाभुक होना चाहिए। सभी मनुष्यों का व्यक्तिगत व सामूहिक नीतियां तैयार करना राज्यों का अधिकार व कर्तव्य है जिनका लक्ष्य विकास में तथा तद्‌जनित लाभों के वितरण में संपूर्ण आबादी तथा सभी

व्यक्तियों की सक्रिय, स्वतंत्र और सार्थक भागीदारी के आधार पर उनके कल्याण की स्थिति में सतत सुधार हो। (अनुच्छेद -2)

3. विकास के अधिकार की चरितार्थ करने के लिए अनुकूल राष्ट्रीय एवं अंतरराष्ट्रीय परिस्थितियां तैयार करना राष्ट्र-राज्यों की प्राथमिक जिम्मेदारी है तथा विभिन्न देशों के बीच मैत्रीपूर्ण संबंधों व सहयोग से संबंधित अंतरराष्ट्रीय कानून के सिद्धांतों के प्रति पूर्ण सम्मान की भावना आवश्यक है। विकास सुनिश्चित करने एवं विकास के मार्ग की बाधाओं को मिटाने में एक-दूसरे से सहयोग करना राज्यों का दायित्व है। (अनुच्छेद -3)
4. विकास के अधिकार को चरितार्थ करने के लिए राज्य अलग-अलग तथा सामूहिक रूप से अंतरराष्ट्रीय विकास नीतियां तैयार करने के लिए कदम उठाएं। विकासशील देशों के चतुर्दिक विकास को बढ़ावा देने के लिए उपयुक्त साधन व सुविधाएं सुलभ करानेके निमित्त प्रभावकारी अंतरराष्ट्रीय सहयोग आवश्यक है। (अनुच्छेद -4)
5. रंगभेद, नस्लवादी, भेदभाव, उपनिवेवाद, विदेशी प्रभुत्व व कब्जे, विदेशों हस्तक्षेप व खतरों, युद्ध के खतरों तथा जन-समाज के आत्मनिर्णय के मूल अधिकार को मानने से इनकार करने से उत्पन्न परिस्थितियों तथा मनुष्यों के मानवाधिकारों के व्यापक व गंभीर उल्लंघनों को समाप्त करने के लिए राज्य दृढ़तापूर्वक कदम उठाएंगे। (अनुच्छेद -5)
6. सभी मानवाधिकार एवं मूल स्वतंत्रताएं अविभाज्य एवं अंतरनिर्भर हैं। नागरिक, राजनैतिक, आर्थिक, सामाजिक, और सांस्कृतिक अधिकारों के कार्यान्वयन, प्रोन्नयन एवं संरक्षण की ओर समान रूप से अविलंब ध्यान देना चाहिए। इन सारे अधिकारों के पालन में विफलता से विकास के मार्ग में उत्पन्न होने वाली बाधाओं को मिटाने के लिए सभी राज्यों को उपाय करने चाहिए। (अनुच्छेद -6)
7. सभी राज्यों को अंतरराष्ट्रीय शांति व सुरक्षा की स्थापना और अनुरक्षण तथा उनके सुदृढ़ीकरण को बढ़ावा देना चाहिए। इस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए अंतरराष्ट्रीय नियंत्रण के अधीन सामान्य व पूर्ण निरस्त्रीकरण संपादित करने के लिए तथा उससे सुलभ होने वाले संसाधनों को सर्वतोन्मुखी विकास में उपयोग किया जाना चाहिए। (अनुच्छेद -7)
8. राष्ट्रीय स्तर पर विकास को साकार करने के लिए राज्य यह सुनिश्चित करेंगे कि बुनियादी संसाधनों, शिक्षा, स्वास्थ्य-सेवाओं, भोजन आवास , रोजगार और आय के न्यायसंगत वितरण के मामले में सभी को अवसर सुलभ हों। विकास की प्रक्रिया में महिलाओं की सक्रिय भूमिका हो, तथा सभी सामाजिक अन्यायों के निराकरण के लिए उपयुक्त आर्थिक एवं सामाजिक सुधार किए जाने चाहिए। सभी मानवाधिकारों को पूर्ण चरितार्थ किए जाने की दृष्टि से राज्यों को सभी क्षेत्रों में जन-सामान्य की भागीदारी को प्रोत्साहन देना चाहिए। (अनुच्छेद -8)
9. इस घोषणा में विकास के अधिकार के सभी पहलू अविभाज्य एवं अंतरनिर्भर हैं, तथा उनमें से प्रत्येक को संपूर्ण के संदर्भ में देखना चाहिए। (अनुच्छेद -9)
10. विकास के अधिकार का पूर्ण प्रयोग एवं उसका क्रमिक अभिवर्द्धन सुनिश्चित करने के लिए उपाय किए जाने चाहिए जिनमें राष्ट्रीय व अंतरराष्ट्रीय स्तरों पर नीतिगत, विधिनिर्माणगत तथा अन्य

उपायों की योजना बनाने, उन उपायों को अंगीकरण करने तथा उन्हें कार्यन्वित करने की कार्रवाईयों का भी समावेश है। (अनुच्छेद -10)

2.7 वियाना घोषणा 1993

महिलाओं के विरूद्ध सभी प्रकार के भेदभावों की समाप्ति संबंधी अभिसमय 1979 (सेडा) तथा बाल अधिकारों संबंधी अभिसमय (Convention on the Rights of Child) 1989 की चर्चा संबंधित अध्यायों में विस्तार से की गई है, अस्तु उन्हें यहां दुहराने की आवश्यकता नहीं है। इसके बाद वियना घोषणा 25 जून, 1993 महत्वपूर्ण है जिसमें लोकतंत्र, विकास तथा मानवाधिकारों की पारंपारिक अंतरनिर्भरता तथा मानवाधिकारों की सार्वभौमिकता, अविभाज्यता एवं अंतरनिर्भरता को संयुक्त राष्ट्र महासभा ने स्वीकार किया। इस घोषणाका उद्देश्य 1948 के बाद से मानवाधिकारों के क्षेत्र में हुई प्रगति की समीक्षा, विकास तथा आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक नागरिक एवं राजनैतिक अधिकारों के संबंधों पर विचार करना, मार्ग की बाधाओं तथा उपायों को पहचान करना था। इसके प्रमुख प्रावधान निम्नलिखित हैं :

1. सभी मानवाधिकारों एवं स्वतंत्रताओं का सार्वभौमिक स्वरूप निर्विवाद है तथा इन जन्मसिद्ध अधिकारों का संरक्षण एवं संवर्द्धन प्रत्येक सरकार का प्राथमिक दायित्व है। सभी जन-समाजों को आत्मनिर्णय का अधिकार है तथा इसका उल्लंघन मानवाधिकार का उल्लंघन है। (अनुच्छेद -1, 2)
2. सभी मानवाधिकार सार्वभौमिक, अविभाज्य, अंतरनिर्भर एवं अंतरर्सबद्ध है। राष्ट्रीय तथा क्षेत्रीय विशिष्टाओं एवं विभिन्न ऐतिहासिक, सांस्कृतिक तथा धार्मिक पृष्ठभूमियों के महत्व की ध्यान में रखना चाहिए मगर राज्य सभी मानवाधिकारों एवं मूल स्वतंत्रताओं का संवर्द्धन करें।(अनुच्छेद -5)
3. लोकतंत्र , विकास, तथा मानवाधिकारों व मूल स्वतंत्रताओं के प्रति सम्मान, ये तीनों अंतरनिर्भर एवं एक-दूसरे को मजबूत बनाने वाले हैं। (अनुच्छेद -8)
4. विश्व मानवाधिकार सम्मेलन पुन:पुष्टि करता हैकि लोकतंत्रीकरण तथा आर्थिक सुधारों की प्रक्रिया से प्रतिबद्ध न्यूनतम विकसित देशों को अंतरराष्ट्रीय समुदाय का समर्थन मिलना चाहिए। (अनुच्छेद - 9)
5. विकास के अधिकार की एक सार्वभौमिक एवं अहरणीय अधिकार तथा मानवाधिकारों के अभिन्न अंग के रूप में पुन: पुष्टि की जाती है तथा इसके विकास का केंद्र बिंदु मनुष्य है। मानवाधिकारों को कम करने का औचित्य सिद्ध करने हेतु विकास के अभाव की दुहाई नहीं दी जाए। विकास के अधिकार को साकार करने के लिए प्रभावकारी अंतरराष्ट्रीय सहयोग का अभिवर्द्धन करना चाहिए। (अनुच्छेद -3)
6. विकास के अधिकार को इस प्रकार साकार करना चाहिए जिससे वर्तमान एवं भावी पीढियों के विकास संबंधी एवं पर्यावरणीय आवश्यकताएं न्यायसंगत तरीके से पूरी हो सकें। विषैले तथा खतरनाक पदार्थों एवं अपशिष्ट चीजों को अवैध रूप से फेंकना प्रत्येक व्यक्ति के जीवन तथा स्वास्थ्य संबंधी मानवाधिकार के लिए गंभीर खतरे की संभावना से युक्त है। प्रत्येक व्यक्ति को वैज्ञानिक प्रगति तथ उसके प्रयोगों से होने वाले लाभों को उपभोग करने का अधिकार। (अनुच्छेद - 11)

ज्ञान शांति मैत्री

7. सभी प्रकार के नस्लवाद एव नस्ली विभेद, विदेशी द्वेष और इनसे संबंधित असहिष्णुता की त्वरित एवं व्यापक समाप्ति अंतरराष्ट्रीय समुदाय का प्राथमिक कर्तव्य है। सभी राज्य सभी प्रकार के नस्लवाद को रोकने और उसका मुकाबला करने का तत्काल उपाय करें एवं सशक्त नीतियां विकसित करें, धर्म पर आधारित असहिष्णुता एवं हिंसा का निवारण करने का उपाय करें। (अनुच्छेद -15 तथा भाग 2 के अनुच्छेद- 19, 20, 22)
8. सभी प्रकार के आतंकवाद की कार्रवाइयां, तरीके एवं आचरण तथा कुछ देशों में नशीले पदार्थों के व्यापार के साथ उसका संबंध, येसब मानवाधिकारों, मूल स्वतंत्रताओं तथा लोकतंत्र का विनाश करने वाली प्रवृत्तियां है जो राज्यों की अखंडता तथा सुरक्षा के लिए खतरा है तथा वैध रूप से गठित सरकारों को अस्थिर करती हैं। आतंकवाद को रोकने और उसका सामना करने के निमित्त सहयोग बढ़ाने के लिए अंतरराष्ट्रीय समुदाय को आवश्यक उपाय करने चाहिए। (अनुच्छेद -17)
9. महिलाओं ओर बालिकाओं के मानवाधिकार अहरणीय तथा सार्वभौमिक मानवाधिकारों से अभिन्न एवं अविभाज्य हैं। लिंग आधारित हिंसा, सभी प्रकार के लैगिंक संताप एवं शोषण मनुष्य की गरिमा एवं महत्व से असंगत हैं, तथा उन्हें हर हालत में समाप्त कर देना चाहिए। (अनुच्छेद -18)
10. अल्पसंख्यक समुदायों के लोग बिना किसी भेदभाव के तथा कानून के समक्ष पूर्ण समानता के स्तर पर सभी मानवाधिकारों एवं मूल स्वतंत्रताओं का पूर्ण रूप से तथा प्रभावकारी ढंग से प्रयोग करें। उन्हें मुक्त रूप से तथा बिना किसी हस्तक्षेप या भेदभाव के अपनी संस्कृति का उपभोग करने, अपना धर्म मानने एवं उसका आचरण करने तथा निजी एवं सार्वजनिक तौर पर अपनी भाषा का प्रयोग करने का अधिकार है। (अनुच्छेद -19)
11. विश्व मानवाधिकार सम्मेलन मूलवासी लोगों की सहज गरिमा एवं समाज के विकास तथा उसकी बहुलता (प्लूरलिटी) में उनके अदभूत योगदान को स्वीकार करता है। उनकी मूल स्वतंत्रताओं तथा मानवाधिकारों का, समानता के स्तर पर और बिना किसी भेदभाव के, सम्मान किया जाए। साथ ही इन राज्यों को उनकी विशिष्ट पहचानों, संस्कृतियों तथा सामाजिक संगठन के महत्व एवं उनकी विविधता को स्वीकार करना चाहिए। (अनुच्छेद -20)
12. विकलांग व्यक्तियों द्वारा मानवाधिकारों एवं मूल स्वतंत्राताओं के विभेद रहित एवं समान उपयोग सुनिश्चित करने की और विशेष ध्यान देने की जरूरत है। चूँकि प्रत्येक व्यक्ति जन्म से समान है और उसे जीवन, कल्याण, शिक्षा, रोजगार, स्वतंत्र रूप से जीने तथा समाज के सभी पहलुओं में भागीदारी करने के समान अधिकार हैं, इसलिए किसी भी विकलांग व्यक्ति के विरूद्ध कोई प्रत्यक्ष विभेद या उसके साथ अन्य नकारात्मक भेदभावपूर्ण व्यवहारउसके अधिकारों का उल्लंघन है। सामाजिक रूप से विहित सभी शारीरिक, वित्तीय, सामाजिक या मनोवैज्ञानिक व्यवधानों को समाप्त करके विकलांग व्यक्तियों के लिए समान अवसर सुनिश्चित कर देना चाहिए। (अनुच्छेद -21 तथा भाग 2 के अनुच्छेद- 63, 64)
13. प्रत्येक व्यक्ति को किसी अत्याचार से बचने के लिए अन्य देशों में शरण की तलाश करने, उसका उपभोग करने तथा स्वदेश लौटनेका अधिकार है। विश्व मानवाधिकार सम्मेलन सभी मानवकृततथा प्राकृतिक विपत्तियों से प्रभावित लोगों की मानवीयता की भावना से सहायता करनेके महत्व तथा आवश्यकता पर जोर देता है। (अनुच्छेद -23)

14. कमजोर समूहों, आप्रवासी श्रमिक सहित, के मानवाधिकारों के संरक्षण एवं संवर्द्धन तथा उनके विरूद्ध भेदभावों की समाप्ति एवं उनके संदर्भ में मानवाधिकार दस्तावेजों एवं उपकरणों के सबलीकरण व उनके अधिक प्रभावकारी कार्यान्वयन को पर्याप्त महत्व देना चाहिए तथा राज्य आप्रवासी श्रमिकों एवं उनके परिवारों के मानवाधिकारों के संरक्षण की गारंटी दे। (अनुच्छेद -24 तथा भाग 2 के अनुच्छेद- 33, 34)

15. घोर गरीबी एवं सामाजिक वर्जन का अर्थ मानवीय गरिमा का दमन है, ऐसी गरीबी के कारणों की जानकारी प्राप्त करने का उपाय करना आवश्यक है जिससे गरीबों के मानवाधिकारों का संवर्द्धनकिया जा सके, तथा घोर गरीबी एवं सामाजिक वर्जन को मिटाया जा सके। (अनुच्छेद -25)

16. विश्व मानवाधिकार सम्मेलन मानवाधिकारों के उल्लंघनों, विशेषकर युद्ध के दौरान जाति संहार, नृजातीय शुद्धीकरण तथा महिलाओं के साथ योजनाबद्ध बलात्कार (जिसके कारण शरणार्थी एवं विस्थापित लोग स्वदेश त्यागने को मजबूर हो जाते हैं) की निंदा करता है तथा ऐसे अपराध करने वालों को सजा देने तथा ऐसे आचरणों के अविलंब अंत का आह्वान करता है। नृजातीय शुद्धीकरण की कार्रवाई करने वाले व्यक्तिगत रूप से जिम्मेदार होंगे तथा उनके खिलाफ कानूनी कार्रवाई की जाए। राज्य नृजातीय शुद्धीकरण की प्रथा को समाप्त करने के लिए अलग-अलग एवं सामूहिक रूप से निवारण करे तथा इसके शिकार लोगों को अविलंब एवं प्रभावकारी उपचारों का अधिकार है। (भाग 2 के अनुच्छेद- 23, 24 तथा भाग 1 के अनुच्छेद 28)

17. यह सुनिश्चित करना राज्यों का कर्तव्य है कि शिक्षा का लक्ष्य मानवाधिकारों तथा मूल स्वतंत्रताओं के प्रति सम्मान की भावना को मजबूत बनाना हो। यह मानवाधिकार शिक्षा पर जोर देता है। राज्य निरक्षरता को मिटाने का प्रयास करे तथा गैर-सरकारी व सरकारी संस्थाओं की मदद से मानवाधिकारों तथा पारस्परिक सहिष्णुता के संबंध में अधिक जागरूकता पैदा करे। (अनुच्छेद -33 तथा भाग 2 के अनुच्छेद- 78, 82)

18. बच्चों के शोषण एवं उत्पीड़न के निवारण के लिए सक्रिय तौर पर प्रयास किया जाना चाहिए। नवजात बालिकाओं की हत्या, हानिकर बालश्रम, बच्चों और अंगों की बिक्री, बाल वेश्यावृत्ति, बच्चों के लिए अश्लील लेखन, तथा अन्य प्रकार के लैंगिक दुर्व्यवहार के खिलाफ प्रभावकारी उपाय करने की जरूरत है। राज्य ऐसे कानूनों एवं विनियमों को रद्द कर दें तथा ऐसे रीति-रिवाजों को मिटा दें जो बालिकाओं के खिलाफ भेदभाव करते हैं और उन्हें हानि पहुँचाते हैं। बच्चों के संरक्षण की व्यवस्था युद्ध के दौरान तथा उसके पश्चात हो। सशस्त्र बलों में भर्ती की न्यूनतम उम्र को बढ़ाने के प्रश्न का अध्ययन बाल अधिकार समिति करे। (भाग 2 अनुच्छेद- 28, 49, 50)

19. राज्य यातना की प्रथा को तत्काल समाप्त कर दे तथा जबरन गायब किए जाने की कार्रवाइयों को रोकने, समाप्त करने तथा उनके दोषी व्यक्तियों को दंडित करने के लिए प्रभावकारी वैधानिक, प्रशासनिक, न्यायिक एवं अन्य उपाय करे। (भाग 2, अनुच्छेद-57, 62)

2.8 सारांश

इस प्रकार स्पष्ट है कि मानवाधिकारों को व्यापक अर्थ में लिया गया है। इनमें किसी प्रकार का पूर्वाग्रह या भेदभाव नहीं है। इसमें यह स्पष्ट किया गया है कि अपने अधिकारों के साथ-साथ दूसरों के अधिकारों का

सम्मान किया जाना है, अधिकारों के साथ-साथ समुदाय के प्रति कर्तव्यों का भी निर्वहन किया जाना है तथा इन अधिकारों मुं आर्थिक, सामाजिक, नागरिक एवं राजनैतिक सभी प्रकार के अधिकार शामिल हैं तथा वे परस्पर निर्भर एवं पूरक हैं। ये अधिकार सभी मनुष्यों को मात्र मनुष्य होने के नाते गरिमा प्रदान करते हैं और इन अधिकारों को अहरणीय एवं अविभाज्य बनाया गया है। एक बात विशेष रूप से उल्लेखनीय है कि संप्रभु राष्ट्रों के माथे पर भी संयुक्त राष्ट्र ने यह बहुत बड़ा दायित्व सौपा है कि उन्हें अंतत: अपने नागरिकों के बहुआयामी हितों को ध्यान में रखकर कानूनों को बनाना है, न कि निरंकुश तरीके से नागरिक-विरोधी कानून बनाना। इस प्रकार संयुक्त राष्ट्र ने विश्व के सभी नागरिकों के हित में 'अधि राष्ट्र–राज्य' (Supra nation-state) की महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। मगर यदि हम व्यवहार में देखें, तो संयुक्त राष्ट्र प्राय: महत्वपूर्ण मौकोंपर पंगु नजर आजा है क्योंकि संयुक्त राज्य अमेरिका संयुक्त राष्ट्र का कहना नहीं मानता और अफगानिस्तान तथा इराक जैसे देशों पर आक्रमण कर देता है और इजरायल, फलस्तीन तथा लेबनान के रिहाइशी क्षेत्रों पर किसी बहाने से लगातार बमबारी करता है जिसके फलस्वरूप हजारों लोगों के जान-माल की हानि होती रहती है।

संयुक्त राष्ट्र के द्वार समय-समय पर की गई महत्वपूर्ण घोषणाएं प्रसंविदाएं (प्रतिज्ञापत्र) तथा अभिसमय बहुत सारे मानवाधिकारों के संरक्षण मे हैं जिन्हें ऐतिहासिक क्रमबद्ध तरीके से आगे तालिका 1 में दिया गया है।

तालिका -1 : संयुक्त राष्ट्र की घोषणाओं, प्रसंविदाओं एवं अभिसमयों का क्रम

क्रमांक	**तिथि**	**घोषणा/प्रसंविदा/अभिसमय**
1.	10 दिसंबर, 1948	मानवाधिकारों की सार्वभौमिक घोषणा (युनिवर्सल डिक्लेरेशन ऑफ ह्यूमन राइट्स)
2.	20 नवंबर, 1959	बाल अधिकारों की घोषणा (डिक्लेरेशन ऑफ ह्यूमन राइट्स द चाइल्ड)
3.	14 दिसंबर, 1960	यूनेस्को शिक्षा में भेदभाव रोकने का अभिसमय (युनेस्को कन्वेंशन टू प्रिवेंट डिस्क्रिमिनेशन इन एजुकेशन)
4.	20 नवंबर, 1963	प्रजातीय भेदभाव के सभी रूपों की समाप्ति पर घोषणा (डिक्लेरेशन ऑन इलिमिनेशन ऑफ आल फॉर्म्स ऑफ रेशियल डिस्क्रिमिनेशन)
5.	21 दिसंबर, 1965	प्रजातीय भेदभाव के सभी रूपों की समाप्ति पर अभिसमय (कन्वेंशन ऑन दइलिमिनेशन ऑफ आल फार्म ऑफ रेशियल डिस्क्रिमिनेशन)
6.	16 दिसंबर, 1966	आर्थिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक अधिकारों पर अंतरराष्ट्रीय प्रसंविदा (इंटरनेशनल कॉविनेंट ऑन इकोनॉमिक, सोशल एंड कल्चरल राइट्स) नागरिक तथा राजनैतिक अधिकारोंपर अंतरराष्ट्रीय प्रसंविदा एंड पोलिटिकल राइट्स) वैकल्पिक प्रोटोकॉल
7.	18 दिसंबर, 1979	महिलाओं के विरूद्ध भेदभाव के सभी रूपों की समाप्ति पर अभिसमय (कन्वेंशन ऑन द इलिमिनेशन ऑफ आल फार्म्स ऑफ डिस्क्रिमिनेशन अग्रेंस्ट वीमेन)

8.	25 नवंबर, 1981	असहनशीलता के सभी रूपों तथा धर्म या आस्था पर आधारित भेदभाव की समाप्ति पर घोषणा (डिक्लेरेशन ऑन इलिमिनेशन ऑफ आल फॉर्म्स इंटॉलरेंस एंड ऑफ डिस्क्रिमिनेशन बेस्ड ऑन रीलिजन ऑर बिलीफ)
9.	18 दिसंबर, 1984	प्रताड़ना, एवं अन्य क्रूर, अमानवीय, घृणित व्यवहार या दंड के विरूद्ध अभिसमय (कन्वेंशन अगेंस्ट टॉर्चर एंड अदर क्रुएल, इनह्यूमन डिग्रेडिंग ट्रीटमेंट आफर पनिशमेंट)
10.	4 दिसंबर, 1984	विकास के अधिकार संबंधी घोषणा
11.	9 दिसंबर, 1988	नजरबंदी या कैद के किसी रूप के अधीन सभी लोगों के संरक्षण के लिए सिद्धांतों का बांड (बांड ऑफ प्रिंसिपल्स फॉर द प्रोटेक्शन ऑफ आल परसंस अंडर एनी फार्म ऑफ डिटेंशन ऑर इंप्रिजनमेंट)
12.	20 नवंबर, 1989	बाल अधिकार अभिसमय (कन्वेंशन ऑन द राइट्स ऑफ द चाइल्ड
13.	18 दिसंबर, 1992	राष्ट्रीय या नृजातीय,धार्मिक एवं भाषाई अल्पसंख्यकों से संबंधित व्यक्तियों के अधिकारों पर घोषणा (डिक्लेरेशन ऑन द राइट्स ऑफ परसंस बिलांगिंग टू नेशनल ऑर एथनिक, रेलिजियस एंड लिंग्विस्टिक माइनॉरिटीज)
14.	25 जून, 1993	वियन्ना घोषणा (मानवाधिकार एवं मूलभूत स्वतंत्रता सभी का जन्मसिद्ध अधिकार)

2.9 बोध प्रश्न

प्रश्न:1- आर्थिक, सामाजिक तथा सांस्कृतिक अधिकारों पर अंतरराष्ट्रीय प्रसंविदा पर विस्तारपूर्वक लिखें।

प्रश्न:2- नागरिक तथा राजनैतिक अधिकारों पर अंतरराष्ट्रीय प्रसंविदा कीबुनियादी प्रेरणा क्या है।

प्रश्न:3- वियाना घोषणा पत्र क्या है ? टिप्पणी करें

2.10 उपयोगी एवं संदर्भ पुस्तकें

- आचार्य, नंदकिशोर. (2003). मानवधिकार के तकाजे. बीकानेर:वाग्देवी प्रकाशन.
- शर्मा, सुभाष. (2009). भारत में मानवधिकार. नई दिल्ली:नेशनल बुक ट्रस्ट.
- उपाध्याय, जय जय राम. (1999). मानव अधिकार. इलाहाबाद: सेंट्रल लॉ एजेंसी.
- मानवाधिकार शिक्षण प्रतिष्ठान (2009). मानवाधिकार : एक परिचय. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन.

ज्ञान शांति मैत्री

इकाई 3 : अन्तरराष्ट्रीय मानवाधिकार संस्थाएँ

इकाई की रूपरेखा

3.1 उद्देश्य
3.2 प्रस्तावना
3.3 प्रमुख मानवाधिकार आयोग, संस्थाएँ, समूह एवं न्यास
3.4 सारांश
3.5 बोध प्रश्न
3.6 उपयोगी एवं संदर्भ पुस्तकें

3.1 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के उपरांत आप निम्नलिखित में सक्षम हो सकेंगे-

1. मानवाधिकार के संरक्षण हेतु स्थापित विभिन्न अंतरराष्ट्रीय संस्थानोंकोसमझने में;
2. मानवाधिकार की बुनियादी प्रेरणा को समझने में।

3.2 प्रस्तावना

द्वितीय विश्व युद्ध के बाद यू. एन. ओ. की स्थापना की प्रक्रिया प्रारंभ हुई। 29 अक्टूबर, 1945 को यू. एन. ओ अस्तित्व में आया। उसके बाद पूरे विश्व में शांति एवं सुरक्षा के लिए प्रयास जारी हुए। इसी परिवेश में मानवाधिकार के सुरक्षा एवं राज्य की शंक्तियों को परिसीमन हेतु अनेक गैर-सरकारी स्तर पर संगठन, आयोग बनाये गये। अन्तरराष्ट्रीय स्तर पर मानवाधिकार के संरक्षण एवं संवर्द्धन के लिए प्रमुखत: चार प्रकार के अभिक्रम कार्य कर रहे हैं जो निम्न है।

I. **मानवाधिकार आयोग :-** दुनिया में सरकार एवं गैर-सरकारी स्तर पर अनेक मानवाधिकार आयोग बनाये गये जो समय-समय पर मानव समाज के प्राकृतिक, जन्मसिद्ध एवं मौलिक अधिकारों की रक्षा करते हैं। जैसे- यू. एन. शरणार्थी आयोग प्रमुख है।

II. **मानवाधिकार संस्थाएँ :-** पूरे विश्व में कुछ ऐसी संस्थाएँ द्वितीय विश्व युद्ध के बाद बनाई गई जो मानवाधिकारके विविध रूप जैसे – महिला, बच्चे, वृद्ध, अल्पसंख्यक, राज्य विहीन लोग जैसे असहाय लोगों के कल्याण एवं उद्धार के लिए कर्य करती है। यू. एन. सुरक्षा परिषद, यू. एन. मानवाधिकार, परिषद, अन्तरराष्ट्रीय श्रम संगठन जैसी संस्थाएँ क्रम में आती है।

III. **मानवाधिकार समूह :-** विश्व में कई ऐसे संगठन है जिनकी प्रकृति एवं संचचना एक जैसी है। जिसके कारण इन संगठनों को एक ही समूह में रखा जाता है। इसके अन्तर्गत इण्टरनेशनल कमीशन ज्यूरिस्ट, अंतरराष्ट्रीय मानवाधिकार न्यायालय, यूरोपियन मानवाधिकार न्यायालय आति आते है। ये मानवाधिकार के संरक्षण हेतु न्यायिक प्रक्रिया को प्रतिपादित करने में अहम भूमिका निभाते है।

IV. **न्यास और गैर सरकारी संगठन :-** विविध नामों एवं ढाँचा से ओतप्रोत –यास एवं गैर-सरकारी संगठन दुनिया में स्थापित है जो कई देशों में मानवाधिकार के संरक्षण के लिए कार्य कर

रहे है। ये –यास एवं गैर-सरकारी सगठन काफी तेजी एवं व्यापक स्तर पर खास करके अल्प विकसित एवं विकासशील देशों में काम कर रहे है। इसके अन्तर्गत एमनेष्टी इण्टरनेशनल, रेडक्रास ह्युमन राइट वाच जैसे संगठन आते है।

3.3 प्रमुख मानवाधिकार आयोग, संस्थाएँ, समूह एवं न्यास :-

इस प्रकार देखा जाये तो विश्व के छ: महाद्वीयों पर अनेक मानवाधिकार आयोग, संस्थाएँ समूह एवं –यास कार्य कर रहे है। जिनमें से कुछ प्रमुख है जिनका अधोलिखित वर्णन किया गया है।

I. **यू. एन. मानवाधिकार समिति :-** यह समिति यू. एन. की ही एक शाखा है। जिसमें 18 विशेषज्ञ सदस्य होते है। यह समिति दुनिया के सदस्य देशों के अन्दर होने वाले मानवाधिकार के प्रति पृष्ठपोषण प्रदान करती है। इस समिति में दो राज्य एक-दूसरे के खिलाफ मानवाधिकार के उल्लंघन के प्रति भी अपील कर सककते हैं। जहाँ पर निष्पक्ष सुनवाई होती है।

II. **यू. एन. मानवाधिकार परिषद:-** यू. एन. की यह परिषद मानवाधिकार के संरक्षण में अहम स्थान रखती है। इसमें अलग-अलग देशों से कुल 47 सदस्य होते है जो अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता, धार्मिक स्वतंत्रता, महिला अधिकार नस्लीय एवं अल्पसंख्य अधिकार आदि के संदर्भ में मामलों की सुनवाई करती है। इसकी स्थापना 2006 में की गई थी। तबसे यह संस्था अपनी अहम भूमिका निभा रही है।

III. **यू. एन. सूरक्षा परिषद :-** यू. एन. सुरक्षा परिषद की स्थापना 1945 में की गई थी। इस परिषद के पाँच प्रमुख सदसय स. अमेरिका, ब्रिटेन, फ्रांस, चीन एवं सोवियत रूस है। यह परिषद ऐसे मूल्कों पर दबाव बनाती है जो आन्तरिक या बाह्य स्तर पर मानवाधिकार का उल्लंघन करते है। मानवाधिकार के संरक्षण हेतु यह संस्था सैन्य बल का प्रयोग भी करती है।

IV. **यू. एन. शरणार्थी आयोग :** इस आयोग की स्थापना 1950 में की गई थी। इसका मुख्यालय फिलिप्पो ग्रैण्डी है। यह आयोग खासकर के दुनिया में शरणार्थियों के लिए कार्य करता है। भूकम्प, भूस्खलन, युद्ध एवं राजनैतिक कारणों से जब दुनिया में लोग शरणार्धि का जीवन व्यतीत करने के लिए विवश होते है तो यह आयोग विविध देशों को संज्ञान में लेकर शरणार्थियों लिए भोजन, कपड़ा आवास के साथ-साथ चिकित्सा जैसी जरूरत हेतु कार्य करता है।

V. **यू. एन.चिल्ड्रेन फंड :-** इस कोडा की स्थापना 11 दिसंबर, 1946 में की गई थी। इसका मुख्यालय न्यूयार्क में स्थित है। इसमें दुनिया के विविध देशों द्वारा अनुदान विश्व में बाल संरक्षण एवं कल्याण के लिए दिया जाता है। यह यू. एन. के तत्वाधान में दुनिया में स्वतंत्र एवं अन्य प्रकार के सरकार एवं गैर-सरकारी संगठनों से मिलकर बाल कल्याण के लिए कार्य करती है। इसको संक्षिप्त में यूनिसेफ (UNICEF) कहते है।

VI. **यू. एन. ह्यूमन सेटलमैंट प्रोग्राम :-** यह एक प्रशाखा है जो यू. एन. के अन्तर्गत कार्य करती है। उसकी स्थापना 1978 में की गई थी। इसका मुख्यालय नैरोबी में स्थित है। यह संस्था मानव के लिए आवास की व्यवस्था विश्व के विविध क्षेत्रों में करती है। साथ ही शहरी क्षेत्र में संशोषणीय विकास के लिए भी कार्य करती है। यह संस्था विविध प्रकार के प्रोग्राम एवं परियोजना विश्व में मानवाधिकार के संरक्षण हेतु चला रही हैं। वही डब्ल्यू यू. एफ. एवं डब्ल्यू. यू. सी जैसे अभिक्रम

इससे जुड़कर विविध प्रकार के कार्य कर रहे है। यह संस्था दुनिया में आवास के क्षेत्र में मानव कल्याण करने वाले संगठनों को प्रत्येक वर्ष पुरस्कार भी प्रदान करती है।

VII. **बाल अधिकारी समिति (CRC) :-** इस समिति की स्थापना 1991 में की गई थी। इसमें 18 सदस्य होते है। पर ये सदस्य किसी संगठन से जुड़े न होकर अपने-अपने देशों से निर्वाचित अथवा चयनित होते हैं। यह समिति दुनिया में बालअधिकार की रक्षा के लिए कार्य करती है। इसके लिए चाइल्ड प्रास्टीट्यूशन, चाइल्ड पोर्नोग्राफी के नियंत्रण एवं बालतस्करी पर निषेध लगाती है।

VIII. **कमिटी ऑन द राइट ऑफ परसन विथ डिस्एबिलिटी :-** इस कमिटि की स्थापना 2008 में न्यूयार्क अभिसमय के समय की गई थी। इसमें कुल 18 सदस्य होते हैं। यह कमिटी दुनिया में विशेष योग्यता (दिव्यांग) के लोगों के मानवाधिकार को लेकर कार्य करती है। इसके लिए जनजागरूकता कार्यक्रम, आर्थिक संबल, शिक्षा, स्वास्थ्य एवं आवास से सम्बन्धित सहयोग इस कमिटी द्वारा प्रदान किये जाते है। यह कमीटि विशेष योग्यता के लोगों के लिए प्रशिक्षणार्थ कार्यक्रम भी संचालित करती है।

IX. **अन्तरराष्ट्रीय अपराध न्यायालय :-** इस न्यायालय की स्थापना 1998 में किय गया तथा यह 2002 में कार्य करना प्रारंभ किया। इसका मुख्यालय नीदरलैण्ड में है। इस न्यायालय द्वारा मानवाधिकार के खिलाफ होने वाले अपराध के प्रति निर्णय सुनाये जाते है। यह अपराध युद्ध, मानव तस्करी अथवा जैविक हथियार से सम्बन्धित हो सकते है। मुख्य रूप से इल न्यायालय द्वारा अन्तर्राष्ट्रीय कानून की स्थापना की जाती है।

X. **यू. एन. उच्चायुक्त मानवाधिकार आयोग :-** इस आयोग की स्थापना 20 दिसम्बर, 1993 में की गई थी। इस आयोग को पारिक्षण मानवाधिकार परिषद जेनेफ द्वारा प्रदान किया जाता है। इसका प्रमुख लक्ष्य विश्व के मानव समाज को खुशहाल, गरिमापूर्ण स्वस्थ, शिक्षित समृद्ध एवं विकसित जीवन शैली प्रदान करना हैं।

XI. **अफ्रिकन मानवाधिकार एवं जन आयोग :-** इस आयोग की स्थापना 1986 में अफ्रिकन बिल ऑफ चार्टर द्वारा की गई थी। इसके द्वारा संयुक्त रूप से अफ्रीका के सभी समाज के अधिकारों की सुरक्षा की जाती है। यह आयोग इस बात पर भी ध्यान देता है कि अफ्रीका महाद्वीप में कोई बाहरी देश या संगठन विविध प्रकार के विकास एवं सुरक्षा के नाम पर मानवाधिकार का उल्लंघन तो नहीं कर रहे है। इसके लिए यह आयोग एक अडिट कमिटी का भी गठन करता है।

XII. **आफ्रिकन कोर्ट ऑन ह्यूतन एण्ड पिपुल राईट :-** इस कोर्ट की स्थापना 1998 में की गई थी। 2009 में यह कार्य करना प्रारंभ किया। इसके नियमों के तहत मानवता का एकीकृत एवं सम्यक विकास करना है जो अफ्रिका महाद्वीप से जुड़ा हुआ होगा। स्वास्थ्य, चिकित्सा आवास एवं सुरक्षा को लेकर यह न्यायालय अफ्रिका महाद्वीप के कल्याण हेतु समर्पित होकर कार्य कर रहा है।

XIII. **यूरोपियन मानवाधिकार न्यायालय :-** इस न्यायालय की शुरूआत प्रारंभिकरूप से 1959 में की गई पर इसकी स्थिरता 1998 में कायम हुई। इसका मुख्यालय स्ट्रेसको है। इसमें कुल 47

न्यायाधीस है। यह न्यायालय यूरोप के संदर्भ में मानवाधिकारों की रक्षा करता है। राज्यों के आन्तरिक एवं अन्तर्राज्यीय मामलों में भी यह न्यायालय मानवाधिकार के मामलों पर यूरोपिय संदर्भ में निर्णय प्रदान करता है।

XIV. **अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन :-** इस संगठन की स्थापना सर्वप्रथम 1919 में की गई थी। 1946 में 'इसे यू. एन. ओ. द्वारा आधिकारिक स्वीकृति प्रदान कर दी गई। इसका मुख्यालय जेनेवा में है। इसका मुख्य कार्य विश्व के सभी देशों के श्रमिकों के अधिकारों की रक्षा करके उनके मानवाधिकारों की सुरक्षा करना है।

XV. **विश्व स्वास्थ्य संगठन :-** इस संगठन की स्थापना 22 जुलाई 1946 में की गई थी। इसका मुख्यालय जेनेवा में है। इसके सदस्य यू. एन. ओ. के विकास समूह के होते है। इसका प्रमुख कार्य दुनिया के सदस्य देशों में स्वास्थ्य सर्वेक्षण कराना तथा रिपोर्ट जारी करना है। मगर इसके अलावा यह संगठन अपने मद से विविध स्तर पर दूनिया के कमजोर एवं असक्त देशों में स्वास्थ्य से सम्बन्धित कार्यक्रम एवं योजना संचालित कर रहा है।

XVI. **कमिशन ऑन द स्टेटस ऑफ ओमेन :** इस आयोग का मुख्यालय न्युयार्क में है। इसमें भौगोलिक सन्तुलन बनाये रखने के लिए महाद्वीवीय स्टट पर 45 सदस्य चुने जाते है। अफ्रिका से 13, एशिया से 11, लैटिन अमेरिका से 9, पश्चिमी युरोप से 8, पूर्वी यूरोप से 4 और शेष अमेरिका से चुन लिए जाते है। इस आयोग का कार्य महिलाओं के स्वास्थ्य, आवास, श्रम, भोजन, शिक्षा, स्वतंत्रता, समानता को लेकर करना है। इसी से जड़कर सिड़ा (CEDAW) दुनिया में कार्य करता है। यह आयोग जननी सुरक्षा को लेकर भी कार्य करना है।

XVII. **खाद्य एवं कृषि संगठन :-** इस संगठन की स्थापना 16 अक्टूबर, 1945 में की गई थी। इसका मुख्यालय इटली के रोम में स्थित है। पहले इसका मुख्यालय इटली के रोम मे स्थित है। पहले इसका मुख्यालय वाशिंगटन में था। यह संगठन दुनिया में उपभोक्ता सुरक्षा, आर्थिक विकास, मत्स्य उत्पादन एवं क्या विकास के द्वारा मानवाधिकार की रक्षा करता है। इस संगठन में सर्वाधिक सक्रियता अफ्रिका एवं दक्षिण एशिया जैसे देशों में पाई जाती है।

XVIII. **अल्पसंख्यक समूह (London) :-** दुनिया में लंदन एक ऐसा शहर है जहाँ पर नृजातियता संबंधित अत्याधिक विविधता है। यहाँ सर्वाधिक 50% लोग गोरे एवं शेष 50% में और लोग है। इस चीज को देखते हुए अल्पसंख्यक की सुरक्षा के लिए 'अल्पसंख्यक समूह (लंदन) की स्थापना की गई जो इस शहर के लोगों के मानवाधिकार की रक्षा करता है।

XIX. **एमनेस्टी इन्टरनेशनल :-** यह एक गैर-सरकारी एवं गैर-सरकारी संगठन है जिसकी स्थापना 1981 में हुआ था। इसका मुख्यालय लंदन शहर में है। यह गैर-सरकारी संगठन दुनिया में मानवाधिकार उल्लंघन एवं यातना के खिलाफ सुनवाई करता है तथा अभियान चलाता है। यह संगठन विविध शोधा एवं याचिकाओं के माध्यम से दुनिया में मानवाधिकारों की यथास्थिति का पता लगाता है। साथ-ही साथ जहाँ मानवता के खिलाफ यातना संबंधी घटनाएँ घटित होती है वहाँ विश्व मीडिया का ध्यान केन्द्रित करके दबाव समूह का निर्माण करता है। वर्तमान समय में इस संस्था के लगभग करोड़ लोग सदस्य है।

XX. ह्यूमन राइट वॉच :- इसकी स्थापना 1978 ई. में हुई थी। यह एक गैर-सरकारी संगठन है। इसका मुख्यालय अमेरिका के न्ययार्क शहर में स्थित है। यह संगठन पूरी दुनिया में मानवाधिकार के संदर्भमें निगहवानी रखता है तथा उसके संदर्भ में रिपोर्ट जारी करके दुनिया का ध्यान दिलाता है। जिस देश में यह संगठन क्रियाशील होता है उसी के नाम से कार्य करता है। जैसे- इण्डिया वॉच, एशिया वॉच, अफ्रिका वॉच आदि।

XXI. इन्टरनेशनल किमटी ऑफ द रेड क्रास :- यह एक नीजि मानवतावादी संगठन है। जिसकी स्थापना 1863 की गई थी। इसका मुख्यालय जेनेवा में है। यह संगठन युद्ध में जख्मी कैदियों को सुरक्षा राहत एवं चिकित्सा प्रदान करता है। प्रथम एवं द्वितीय विश्व युद्ध में इस संगठनों ने काफी बढ़ चढ़कर मानवता की रक्षा एवं कल्याण के लिए कार्य किया था। आज भी यह संगठन पूरी दुनिया में विविध प्रकार के शरणार्थियों के एिल काग्र कर रहा है। इस संगठन की भी विशेषता यह है कि यह जहाँ कार्य करता है उसी स्थान के नाम से संबोधित खुद से करता है।

XXII. इण्टनेशनल कमिशन ऑफ ज्यरिस्ट :- यह आयोग एक गैर-सरकारी संगठन के भ्राँति कार्यकर्ता है। इसकी स्थापना 1952 में हुई थी। इसका मुख्यालय ‘जेनेवा’ में है। इसका प्रमुख कार्य मानवाधिकार की रक्षा करना है। इसमें अनेक दुनिया के वकील एवं न्यायाधिस सम्मिलित होकर मानवाधिकार की रक्षा एवं संवृद्धि के लिए अपना योगदान प्रदान है। आर्थिक, सामाजिक, राजनैतिक, धार्मिक लैंगिक अधिकारों के संदर्भ में इस संगठन अपनी भूमिका निभाते।

XXIII. द इण्टनेशनल फेडरेशन ऑफ ह्यूमन राइट :- इस संघ की स्थापना 1922 में हुई थी। यह गैर-सरकारी संगठन है जो मानवाधिकार संरक्षण एवं मानव कल्याण हेतु कार्य करता है। इस संघ को सरकारी एवं गैर-सरकारी स्तर पर विविध स्रोतों से निधि प्राप्त होती है। यह संघ दुनिया के विविध क्षेत्रों में विविध आधार जाति, भाषा, नस्ल धर्म, लिंग पर होने वाले शोषण एवं भेदभाव के खिलाफ कार्य करता है। दुनिया में मानव जाति के स्थानांतर से संबंधित अधिकारों को लेकर भी यह संघ कियाशील रहा है तथा मानव स्थानांतरण के क्षेत्र में कार्य कर रहा है। यह संघ महिलाओं के खिलाफ होने वाले घरेलू हिंसा के खिलाफ भी कार्य करता है। इस प्रकार देखा जाये तो इस संघ की मानवाधिकार संरक्षण में व्यापक भूमिका दुनिया के विविध हिस्से में रही है।

XXIV. द इण्टरनेशनल लिग्यू ऑफ ह्यूमन राइट :- इसकी स्थापना1942 में हुई थी। इसका मुख्यालय न्युयार्क में है। यह एक संगठन है जो मानवाधिकार की रक्षा मौलिक रूप से देशज रूप में करता है। यह संगठन विविध देशों के नागर समाज (Civil Society) के मजबूती के लिए भी कार्य करता है। आज भगभग 50 इसकी शाखाएँ दुनिया के विविध देशों में कार्यरत हैं।

3.4 सारांश

सारांश रूप में कहा जा सकता है कि द्वितीय विश्व युद्ध के बाद दुनिया में राष्ट्र राज्यों की स्थापना के साथ-साथ साम्राज्यवादी एवं उपनिवेशवादी शक्तियों का खात्मा हुआ। लगभग ढाई सौ वर्षों तक सामाज्यवादी एवं उपनिवेशवादी तकतों ने दुनिया को लूट, खसोट एवं हिंसा की घटनाओं से दहला दिया था। जिसके ही परिणाम दो विश्वयुद्ध एवं व्यापक जनसंधार दुनिया को देखने पड़े। दुनिया दुबारा जनसंहार एवं विश्वयुद्ध के दैताकार मुख में न जाये उसके लिए 24 अक्टूबर, 1945 को संयुक्त राष्ट्र संगठन की स्थापना

हुई। पर सिर्फ इस संगठन की स्थापना से दुनिया की समस्या खत्म नही हो सकती थी। उसके लिए यू. एन. ओ. अनेक आयोगों एवं संगठनों का विकास करके विश्वमानवता के आर्थिक सामाजिक, धार्मिक राजनैतिक अधिकारों के संरक्षण एवं विकास के लिए कार्य करना प्रारंभ किया जिसके प्रतिफल स्वरूप आज विश्व में काफी सुधार दिख रहे है।

दुसरे तरफ लोकतंत्रिक राष्ट्र राज्य के कलेवर में नागर समाज ने भी सरकारके सापेक्ष मानवाधिकारों की रक्षा के लिए विविध संगठनों का विकास किया। इसी संगठनों में से कुछ ऐसे संगठन उभरकर वैश्विक स्तरीय रूप ले लिया। जैसे –एमनेस्टी इण्टरनेशनल एवं रेडक्रास ऐसे संगठन है जो पूर तरह से गैर-सरकारी स्वरूप धारण करते है। तथा जिनका स्वरूप वैश्विक आकार का है।

3.5 बोध प्रश्न

प्रश्न:1- प्रमुख मानवाधिकार आयोग, संस्थाएँ, समूह एवं न्यास क्या है? विस्तारपूर्वक लिखें।

प्रश्न:2- सुरक्षा परिषद की बुनियादी प्रेरणा क्या है।

प्रश्न:3- अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठनपर टिप्पणी करें।

3.6 उपयोगी एवं संदर्भ पुस्तकें

- आचार्य, नंदकिशोर. (2003). मानवधिकार के तकाजे. बीकानेर:वाग्देवी प्रकाशन.
- शर्मा, सुभाष. (2009). भारत में मानवधिकार. नई दिल्ली:नेशनल बुक ट्रस्ट.
- उपाध्याय, जय जय राम. (1999). मानव अधिकार. इलाहाबाद: सेंट्रल लॉ एजेंसी.
- मानवाधिकार शिक्षण प्रतिष्ठान (2009). मानवाधिकार : एक परिचय. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन.

ज्ञान शांति मैत्री

इकाई -4 :राष्ट्रीय मानवाधिकार संस्थाएँ

इकाई की रूपरेखा

4.1 उद्देश्य
4.2 प्रस्तावना
4.3 भारतीय राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग
4.4 राष्ट्रीय अल्पसंख्यक आयोग
4.5 राष्ट्रीय महिला आयोग
4.6 राष्ट्रीय अनुसूचित जाति व अनुसूचित जनजातिआयोग
4.7 सारांश
4.8 बोध प्रश्न
4.9 उपयोगी एवं संदर्भ पुस्तकें

4.1उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के उपरांत आप निम्नलिखित में सक्षम हो सकेंगे-

1. मानवाधिकार के सम्वर्धन के लिए स्थापित विभिन्न राष्ट्रीय संस्थाओं कोसमझने में;

4.2 प्रस्तावना

4.3 भारतीय राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग

भारतीय राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग की स्थापना मानवाधिकार संरक्षण अधिनियम 1993 के द्वारा हुई। मानवाधिकारों को मानवीय जीवन, स्वतंत्रता, समानता व गरिमा के उन अधिकारों के रूप में परिभाषित किया गया है, जिनका संविधान आश्वासन देता है या जो अन्तर्राष्ट्रीय अनुबन्धों में निर्दिष्ट हैं तथा भारत में न्यायालय द्वारा लागू किए जा सकते है। मानवाधिकारों की बेहतर सुरक्षा के उद्देश्य से यह कानून बनाया गया। **राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग का गठन :** आयोग एक अध्यक्ष, व चार अन्य सदस्यों सहित पाँच-सदस्यीय निकाय है। इसका अध्यक्ष सर्वोच्च न्यायालयका भूतपूर्व अध्यक्ष होता है; अन्य चार सदस्यों में से दो सदस्य क्रमश: सर्वोच्च न्यायालय के वर्तमान अथवा निवृतमान न्यायाधीश, वर्तमान अथवा निवृतमान मुख्य न्यायाधीश किसी एक उच्च न्यायालय होते हैं। अन्य दो सदस्य "मानवाधिकारों से सम्बन्धित जानकारी रखने वाले अथवा उनका व्यावहारिक अनुभव रखने वाले" व्यक्ति होते हैं। आयोग के इन पाँचों सदस्यों की नियुक्ति भारत के राष्ट्रपति द्वारा की जाती है। राष्ट्रपति द्वारा रा. मा. आ. के अध्यक्ष व चार सदस्यों की नियुक्ति भारतके प्रधानमंत्री, लोकसभा, अध्यक्ष, गृहमंत्री, लोकसभा में विपक्ष के नेता, राज्य सभा में विपक्ष के नेता तथा राज्य-सभा के उपाध्यक्ष की सिफारिशों पर आधारित होती है।

मानवाधिकार संरक्षण अधिनियम, 1993 राज्यों में भी 'राज्य मानवाधिकार आयोगों की स्थापना का प्रावधान करता है। इस प्रकार राज्यों में मानवाधिकार- आयोगों की स्थापना के द्वारा राष्ट्रीय मानवाधिकार

आयोग की पूरक संस्थाओं की स्थापना की गई है। इसका उद्देश्य देश-भर में मानवाधिकारोंकी अनदेखी व हनन की शिकायतों के निवारण की सुविधा आसानी से उपलब्ध करवाना है।

कार्यक्षेत्र व अधिकार

रा. मा. आ. का. कार्यक्षेत्र व उसके अधिकार, जिनके द्वारा वह प्रभावी रूप में अपने उत्तरदायित्व निभाता है, निम्नलिखित हैं :

अ) **जाँच व पड़ताल :-** एक सार्वजनिक-सेवारत अधिकारी द्वारा मानवाधिकारों के हनन, उसमें सहायक होने अथवा ऐसे उल्लंघन को रोकने के प्रति लापरवाही करने की शिकायत की जाँच-पड़ताल, राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग कर सकता है। ऐसी किसी भी प्रकार की जाँच आयोग स्वयं अपनी पहल पर भी (सुओ मोटो) कर सकता है या मानवाधिकार के उल्लघंन के पिड़ित या किसी अन्य व्यक्ति द्वारा पीड़ित की ओर से प्रस्तुत याचिका पर आधारित कार्यवाही के रूप में उसकी जाँच-पड़ताल कर सकता है। मानवाधिकार आयोग की स्वयं की पहल पर जाँच करने का अधिकार, समाज के उन अपेक्षित वर्गों के सन्दर्भ में विशेष रूप से महत्वपूर्ण है, जिनके पास व्यक्तिगत शिकायत करने के आर्थिक व सामाजिक साधन उपलब्ध नहीं हैं।

राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग को सिविल न्यायालय के समान अधिकार प्राप्त हैं। इन अधिकारों का उपयोग करते हुए आयोग किसी भी व्यक्तिको आवश्यक होने पर सम्मन जारी उसकी उपस्थिति को अनिवार्य रूप से लागू करवा सकता है; शपथ के आधीन जाँच कर सकता है; जाँच के लिए आवश्यक दस्तावेजों व सामग्री को अपने सामाने प्रस्तुत करने के आदेश दे सकता है; किसी भी न्यायालय या कार्यालय से सार्वजनिक रिकॉर्ड उपलब्ध करवाने के आदेश दे सकता है तथा गवाहों व दस्तावेंजों की जाँच कर सकता है। एक प्रभावी अर्ध-न्यायिक निकाय के रूप में इन अधिकारों से युक्त रा. मा. आ. अपने उत्तरदायित्वों के निर्वाह में काम करता है।

जाँच पूरी होने पर रा. मा. आ. सरकार अथवा सम्बद्ध प्राधिकरण को दोषी के विरूद्ध अभियोजन की कार्यवाही प्रारंभ करने अथवा कोई अन्य उचित कार्यवाही की सिफारिश कर सकता है।

आ) **न्यायालय की कार्यवाही में हस्तक्षेप :-** मानवाधिकारों के उल्लंघन से, सम्बन्धित मामलों में न्यायालय की अनुमति से मानवाधिकार आयोग, न्यायिक कार्यवाही में हस्तक्षेप कर सकता है। रा. मा. आ. के मानवाधिकार के उल्लंघन की स्थिति में प्रभावी हस्तक्षेप का उदाहरण गुजरात का बेस्ट बेकरी का मामला है। उक्त मामले में आयोग ने दांडिक न्याय-व्यवस्था की निष्पक्षता पर गम्भीर प्रश्न उठाए। निष्पक्ष विचारण के मद्देनजर रा. मा. आ. ने सर्वोच्च-न्यायालय में याचिका दायर,करके बेस्ट बेकरी मामले में गुजरात के फास्ट-ट्रैक न्यायालय के उस आदेश को रद्द करने का अनुरोध किया, जिसमें उक्त न्यायालय ने इस मामले के सभी 14 अभियुक्तों को बरी कर दिया था।

इ) **निरीक्षण :** रा. मा. आ. जेलों व जेलों व अन्य संस्थाओं का निरीक्षण करके बन्दियों के रहने की स्थिति सुधारने सम्बन्धी सिफारिशें कर सकता है। मानवाधिकारों के संरक्षण सम्बन्धी मौजूदा कानूनी व सवैधानिक व्यवस्थाओं की जाँच भी कर सकता है, उनको प्रभावी रूप से लागू करने के उपायों के मानवाधिकारों के बेहतर संरक्षण के हित में सुझाव दे सकता है।

ई) **जागरूकता बढ़ाने के उपाय :** रा. मा. आ. का एक अन्य मुख्य उत्तरदायित्व सरकार को उसके सवैधानिक उत्तरदायित्वों के अनुरूप अन्तर्राष्ट्रीय मानवाधिकार सन्धियों को स्वीकार करते हुए

उनका सम्मान करने के प्रति संवेदनशील बनाना भी है। रा. मा. आ. मानवाधिकारों के संरक्षण सम्बन्धी साक्षरता तथा जानकारी का प्रचार-प्रसार करने के लिए भी उत्तरदायी है, व इस क्षेत्र में कार्यरत गैर-सरकारी संगठनों व संस्थाओं के प्रयत्नों को प्रोत्साहन देना भी उसके कार्यक्षेत्र में आता है।

शिकायत करने के तरीके

मानवाधिकारों के उल्लंघन होने से पीड़ित कोई भी व्यक्ति, अथवा उसकी ओर से कोई अन्य व्यक्ति अथवा स्वयं सेवी संस्था किसी भी भाषा में रा. मा. आ. को अपनी शिकायत कर सकता है। मानवाधिकार के कथित उल्लंघन की घटना घटने के एक वर्ष के अन्दर शिकायतकर्ता रा. मा. आ. को शिकायत कर सकता है। किन्तु ऐसे किसी मामले में रा. मा. आ. जाँच नहीं कर सकता जो किसी अन्य आयोग के समक्ष विचाराधीन हो। शिकायत दर्ज करने के लिए कोई शुल्क, फीस नहींली जाती। इस प्रकार शिकायत निवारण में वित्तीय साधनों की बाधा को दूर कर दिया गया है।

आयोग की नियुक्ति-प्रक्रिया स्वतंत्र नहीं है व न ही वह राजनीतिक हस्तक्षेप से मुक्त है ... राष्ट्रपति को की जाने वाली सिफारिश सरकार –समर्थक अधिकार है, क्योंकि प्रधानमंत्री, गृहमंत्री, लोकसभा अध्यक्ष व राज्य सभा उपाध्यक्ष अक्सर सत्ताधारीदल के सदस्य होते हैं, व नियुक्ति करने वाली कमेटी में दो-तिहाई बहुमत बनाने की स्थिति में होते हैं, जबकि विपक्ष के नेताओं को केवल दो ही स्थान प्राप्त होते हैं...।

कमीशन द्वारा तैयार की गई वार्षिक रिपोर्ट जनता की इस सम्बन्ध में जानकारी का एकमात्र साधन भर है। यह रिपोर्ट अधिकतर काफी देरी से बाद प्रकाशित होती है, न यह पूरी होती है और नही ही विस्तृत। इस प्रकार यह अपर्याप्त व असन्तोषजनक ही कही जा सकती है।

4.4 राष्ट्रीय अल्पसंख्यक आयोग

अल्पसंख्यक वर्गों की परिभाषा

अल्पसंख्यक वर्गों की कोई सर्वमान्य परिभाषा नहीं है। किन्तु सामान्य रूप से स्वीकृत एक कार्यकारी परिभाषा संयुक्त-राष्ट्र के विशेष- रिपोर्टर फ्रांसैस्को कैपोतोर्ती ने इस रूप में प्रस्तुत की है: एक राज्य की आबादी में निम्न संख्या का एक ऐसा समूह जो गैर प्रभावशाली स्थिति में हो, जिसके सदस्य उस राज्य के नागरिक होते हुए- राज्य की अधिकांश आबादी से भिन्न नृजातीय या भाषाई विशेषताएँ रखते हो व अपनी संस्कृति परम्परा धर्म या भाषा के संरक्षण के प्रति एकजुटता का भाव अप्रकट रूप से प्रदर्शित करते हों।

राष्ट्रीय अल्पसंख्यक आयोग अधिनियम 'अल्पसंख्यक समूह' इस अधिनियम के उद्देश्य के लिए ऐसे समुदाय को मानता है, जिसे केन्द्रीय सरकार द्वारा जारी अधिसूचना में शामिल किया गया हो। केन्द्रीय सरकार ने निम्नालिखित समूहों को अधिसूचना जारी करके 'अल्पसंख्यक' समूह की श्रेणी में रखा है : मुस्लिम ईसाई, सिक्ख, पारसी व बौद्ध अल्पसंख्यक समूहों की यह परिभाषा अन्य कई धार्मिक –समूहों को अपनी परिधि के बाहर रखती है, जैसे यहूदी, जैनधर्म व बहाई सम्प्रदाय।

भारत सरकार द्वारा पारित प्रस्ताव दिनांक 12 जनवरी, 1978 के अल्पसंख्यक समूहों के कल्याण के संकल्प के अन्तर्गत 1978 में अल्पसंख्यक आयोग का गठन किया गया। 1992 में राष्ट्रीय अल्पसंख्यक आयोग अधिनियम के पारित होने से उक्त कमीशन एक विधायी निकाय बना दिया गया। इसका उद्देश्य एक संगठित व प्रभावी तरीके से अल्पसंख्यक समुदायों के हितों को बेहतर सम्बोधित करना था।

आयोग सात-सदस्यीय निकाय है, जिसमें एक अध्यक्ष, एक उपाध्यक्ष व पाँच सदस्य होते हैं। आयोग के सभी सदस्यों को केन्द्रीय सरकार द्वारा नामित करते समय इस बात का ध्यान रखा जाता है कि वे विशिष्ट योग्यता रखने वाले प्रतिष्ठित व उच्च चारित्रिक मानदंडो पर खरे व्यक्ति हो; अध्यक्ष व अन्य पाँच सदस्यों।

राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोगकी भाँति राष्ट्रीय अल्पसंख्यक आयोग सिविल-न्यायालय के अधिकारों से सम्पन्न है। उसके कार्य, व्यापक रूप से संघ व राज्यों में अल्पसंख्यक समूहोंकी प्रगति के विकास का मूल्यांकन करना है। वह संविधान में प्रदत्त सुरक्षा-उपायों तथा संसद व राज्य-विधानपालिकाओं द्वारा बनाए गए कानूनोंके कार्यान्वयन का निरीक्षण करने तथा अधिकारों से वंचित किए जाने व उत्पीड़न के विशिष्ट मामलों की सुनवाई व उस पर आवश्यक कार्यवाही करने के लिए उत्तरदायी है। अल्पसंख्यक समुदाय के संवैधानिक व न्यायिक सुरक्षा-उपायों का, समय-समय पर मूल्यांकन व उनको मजबूत बनाने के लिए वह सिफारिश प्रस्तुत करता है।

अर्ध-न्यायिक शक्ति-सम्पन्न होते हुए भी, राष्ट्रीय अल्पसंख्यक आयोग को औपचारिक रूप से जाँच करने का वैधानिक अधिकार प्राप्त नहीं है, न ही उसके पास स्वतंत्र रूप से जाँच-पड़ताल करने का अपना कोई व्यवस्थात्मक प्रबंध ही है। राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग, राष्ट्रीय अल्पसंख्यक आयोग तथा राष्ट्रीय महिला आयोग में से किसी के पास स्वतंत्र जाँच के अधिकार का न होना उनकी प्रभावी भूमिका निभाने में एक बड़ी बाधा के रूप में देखा जा सकता है।

आयोग की शक्तियाँ भी काफी सीमित हैं- किसी मामले की जाँच पूरी होने पर, वह उसमें अभियोजन की कार्यवाही आरंभ करने में सक्षम नहीं है, वह केवल अपनी सिफारिश करने, मुआवजा प्रदान करने की सिफारिश या मामलों को सम्बद्ध सक्षम निकाय या प्राधिकरण को भेजने भर की कार्यवाही कर सकता है।

राष्ट्रीय अल्पसंख्यक आयोग की अधिकार सीमा में, अल्पसंख्यक समुदायों की सुरक्षा के उपायों के प्रभावी कार्यान्वयन की सिफारिश केन्द्र व राज्य सरकार को करना आता है। अल्पसंख्यकों के साथ होने वाले भेदभाव का अध्ययन करना व उन्हें रोकनेके उपायों की सरकार से सिफारिश करना, अल्पसंख्यक समूहों/समुदायों की सामाजिक-आर्थिक व शैक्षणिक विकास से सम्बन्धित विषयों में अनुसंधान व गहन-अध्ययन को प्रोत्साहन देना व इन समूहों व समुदायों से सम्बन्धित अन्य महत्वपूर्ण मुद्दों पर केन्द्रीय सरकार को अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत करना यह सब आयोग के कुछ महत्वपूर्ण उत्तरदायित्व है।

अल्पसंख्यक आयोग को शिकायत करने के तरीके

अल्पसंख्यक आयोग अधिनियम की धारा -19 (1) (ड) के अनुसार अल्पसंख्यक आयोगके अधिकार-क्षेत्र के अन्तर्गत आने वाले कोई भी व्यक्ति या संस्था अपनी समस्या/शिकायत आयोग को दे सकता है। सभी शिकायतें आयोग के "अध्यक्ष, किसी सदस्य अथवा सचिव के माध्यम से की जानी चाहिए।" आर्थिक स्थिति में भेदभाव को समाप्त करने व समान रूप से शिकायत- निवारण सबको उपलब्ध करवाने के उद्देश्य से शिकायत करने/भेजने पर कोई शुल्क नहीं लिया जाता। किन्तु शिकायत करने के कुछ नियम भी हैं, जिनके अनुसार आयोग शिकायतें स्वीकार करता है।

आयोग किसी घटना/उत्पीड़न /उल्लंघन की स्थिति में स्वयं पहल करके किसी व्यक्ति, समूह अथवा संस्था से सम्बन्धित प्रचार-माध्यमों द्वारा दी गई सूचना अथवा विश्वसनीय जानकारी प्राप्त होने पर कार्यवाही कर सकता है।

4.5 राष्ट्रीय महिला आयोग

हमारी पितृ-सत्तात्मक सामाजिक व्यवस्था में महिलाओं का दोयम दर्जा होने के कारण उन्हें विभिन्न कानूनी व सामाजिक भेदभावों का सामना करना पड़ता है। संविधान-निर्माताओं ने इस लैंगिक असमानता को दूर करने की आवश्यकता को समझते हुए उनके निवारण के लिए विशेष प्रावधान किए। राष्ट्रीय महिला आयोग एक वैधानिक आधार पर स्थापित ऐसी संस्था है, जिसे राष्ट्रीय महिला आयोग अधिनियम 1990 के अंतर्गत गठित किया गया।

राष्ट्रीय महिला आयोग में एक अध्यक्ष व पाँच सदस्यों व एक सदस्य सचिव का प्रावधान है। अधिनियम में प्रदत्त दिशा-निर्देश के अनुसार आयोग के सभी सदस्यों को केन्द्रीत-सरकार द्वारा मनोनीत किए जाने की व्यवस्था की गई है।

राष्ट्रीय महिला आयोग का कार्यक्षेत्र

अ) जाँच-पड़ताल :- राष्ट्रीय महिला आयोग संविधान व अन्य कानूनों में महिलाओं के लिए बने सुरक्षा उपायों की जाँच-पड़ताल व उनके अध्ययन करने के लिए सिविल-न्यायालय के अधिकारों से सम्पन्न है।

महिला आयोग महिलाओं के अधिकारों के हनन व उत्पीड़न की स्थिति में उन पर विचार करने व उनसे सम्बद्ध सक्षम प्राधिकरण को उन मामलों को भेजनेतथा स्वयं अपनी पहल पर ऐसी स्थितियों में हस्तक्षेप करने में सक्षम है। यह व्यक्तिगत उत्पीड़न की शिकायतों की सुनवाई करता है। कानूनों के उचित कार्यान्वयन न होने, सरकार के नीतिगत-निर्णयों के अनुपालन न होने, उन सरकारी दिशा-निर्देशों व आदेशों, जिनका उद्देश्य महिलाओं की कठिनाईयों को दूर करना, उनका कल्याण सुनिश्चित करना तथा महिलाओं की समानता का विकास है, का पालन न होने पर, आयोग स्वयं की पहल पर, ऐसे मामलों पर विचार व उपयुक्त कार्यवाही की सिफारिश सम्बद्ध अधिकारियों या प्राधिकरण को भेज सकता है।

आ) कार्य-आधारित अनुसंधान :- महिलाओं पर होने वाले अत्याचार व भेदभाव जनित समस्याओं व परिस्थितियों पर आयोग गहन-अध्ययन व अनुसंधान-आधारित अध्ययन व जाँच करने में सक्षम है। वह लिंग आधारित भेदभाव को दूर करने के उपायव सिफारिश सरकार को भेजता है। राष्ट्रीय महिला-आयोग के सदस्य, महिलाओं के सामाजिक-आर्थिक विकास की योजना-प्रक्रिया में हिस्सेदारी करते हैं व अपने सुझाव देते हैं, जीवन के सभी क्षेत्रों में महिलाओंके प्रतिनिधित्व को बढ़ाने तथा उनकी प्रगति की समीक्षा करते हैं। रा. म. आ. दायित्व संविधान व अन्य कानूनों में महिलाओं के सुरक्षा-उपायों का मूल्यांकन करना, कानूनों के महिलाओं के जीवन पर प्रभाव का अध्ययन करना, उनकी कमियों को दूर करने के लिए उपयुक्त संशोधन का सुझाव देना व कल्याणकारी कानूनों के प्रभावी कार्यान्वयन के लिए सुझाव देना भी है। उदाहरण के लिए, राष्ट्रीय महिला आयोग ने अपने वैधानिक आदेश का पालन करते हुए भारतीय दंड-विधानमेंआवश्यक संशोधन की माँग की है, जिससे नाबालिग लड़कियों की खरीद-बिक्री पर प्रतिबन्ध लग सके। उसने बाल-विवाह को गैर-जमानती अपराध बनाने तथा बाल-विवाह निरोधक कानून (1929) के अन्तर्गत उसे गैर-कानूनी घोषित करने की भी सिद्यारिश की है। नागरिक समाज के सदस्यों से विचार-विमर्श करके आयोग की भी सिफारिश की है। नागरिक समाज के सदस्यों से विचार-विमर्श करके

आयोग ने काम की जगह यौन-उत्पीड़न रोकने तथा महिलाओं के विरूद्ध घरेलु-हिंसा रोकने क विधेयक का विस्तुत प्रारूप तैयार किया।

इ) **कानूनी हस्तक्षेप :** राष्ट्रीय महिला आयोग ने पारिवारिक महिला लोक अदालतों के मौलिक व नए प्रयत्न जैसे प्रयास किए हैं, जिनके द्वारा अब तक 7500 पारिवारिक विवादों का, उन पर होने वाले धन, समय व शक्ति की बर्बादी को बचाते हुए उनके समाधान करके, महिलाओं को राहत दी है। आयोग पारिवारिक-कानूनों से सम्बन्धित मामलोंकी सुनवाई करके उनका समाधान करता है व पारिवारिक–विवादों को औपचारिक कानूनी व्यवस्था के बाहर सुलझाने को प्रोत्साहन देता है। वह न्याय व्यवस्था में महिलाओं के सशक्तिकरण के लक्ष्य को पाने के लिए भी प्रयासरत है। महिला आयोग द्वारा विकसित पारिवारिक महिला लोक अदालतों में किए गए फैसले, विवाद से सम्बन्धित दोनों पक्षों पर कानूनी रूप से मान्य होते हैं।

राष्ट्रीय महिला आयोग की सीमाएँ

महिला आयोग एक प्रभावी निकाय के रूप में काम कर पाने में आन्तरिक व बाहरी कारकों से बाधित है। रा. म. आ. केवल सुझाव देने वाले निकाय के रूप में देखी जाती है, क्योंकि इसके अधिकार केवल सुझाव देने तक सीमित हैं। यह अपने सुझावों को लागू करने में सक्षम नहीं है। इस कारण यह एक प्रभावी संस्था नहीं बन पाई है। प्रभावी अधिकारों के न होने पर, राष्ट्रीय महिला आयोग अन्य संस्थाओं पर निर्भर रहकर काम कर सकता है।

अपनी कार्यकुशलता व कार्यक्षमता को प्रभावी बनाने के लिए महिला आयोग ने सरकार से उसे अधिक अधिकारयुक्त करने का अनुरोध किया है- यह अनुरोध अपेन कर्मचारियों की नियुक्ति, महिलाओं के अधिकारों की प्रभावी सुरक्षा के लिए एक कमिशनर की नियुक्ति तथा राष्ट्रीय मानवधिकार के समान अभियोयजन की कार्यवाही प्रारंभ करने की शक्ति तथा जम्मू–कश्मीर के राज्य को अन्य भारतीय राज्यों के समान उसके अधिकार-क्षेत्र में शामिल करने जैसे सुझावों के रूप में है।

ज्ञान शांति मैत्री

4.6 राष्ट्रीय अनुसूचित जाति व अनुसूचित जनजाती आयोग

राष्ट्रीय अनुसूचित जाति व अनुसूचित जनजातिआयोग पैंसठवें (65वें) संविधान संशोधन अधिनियम, 1990 के अन्तर्गत गठित किया गया। इसके गठन का उद्देश्य सवैधानिक व कानूनी प्रावधानों के अन्तर्गत प्रदान किए गए अनुसूचित व जनजातियों के सुरक्षा-उपायों का निरीक्षण व उनका प्रभावी कार्यान्वयन करना था।

आयोग का विभाजन

राष्ट्रीय अनुसूचित जाति व अनुसूचित जनजाति आयोग को 94 वें संविधान संशोधन विधेयक, 2002 के अन्तर्गत दो अलग आयोगों के रूप में पुनर्गठित किया गया। इस बँटवारे को उक्त संविधान संशोधन में इस प्रकार स्पष्ट किया गया; भौगोलिक व सांस्कृतिक रूप से अनुसूचित जनजातियाँ अनूसूचित जनजातियों से भिन्न हैं व उनकी समस्याएँ भी अनुसूचित से भिन्न हैं ... अनुसूचिज जनजातियों के हितों की प्रभावी सुरक्षा के हित में, अनुसूचित जनजातियों के लिए अलग राष्ट्रीय आयोग की स्थापना का प्रस्ताव पेश किया जाता है,

यह मौजूदा राष्ट्रीय अनुसूचित जातियों व अनुसूचित जनजातियों के आयोग को दो भागों में बाँटकर अलग करनेका प्रस्ताव है।

राष्ट्रीय अनुसूचित जाति आयोग एक अध्यक्ष एक उपाध्यक्ष तथा पाँच अन्य सदस्यों सहित सात-सदस्यीय निकाय है, जिनकी नियुक्ति भारत के राष्ट्रपति द्वारा की जाती है। राष्ट्रीय अनुसूचित जनजाति आयोग एक अध्यक्ष व दो अन्य सदस्यों से गठित किया गया है। इन तीनों सदस्यों की नियुक्ति भी राष्ट्रपति के द्वारा की जाती है।

दोनों आयोग सिविल-न्यायालय के अधिकारों से युक्त हैं तथा संविधान व अन्य कानूनों द्वारा प्रदान किए सुरक्षा-उपायों सम्बन्धी सभी विषयों की जाँच, निरीक्षण व मूल्यांकन करने में सक्षम हैं। दोनों आयोग क्रमश: अनुसूचित जातियों व अनुसूचित जनजातीयों से सम्बन्धित सामाजिक-आर्थिक विकास की योजना प्रक्रियाओं में भाग लेने तथा उसमें अपने सुझाव देने तथा विकास की प्रगति का मूल्यांकन करने के लिए उत्तरदायी हैं। दोनों आयोग अपनी विभिन्न गतिविधियों, व उक्त वर्गों को प्रदान किए गए सुरक्षा-उपायों के कार्यान्वयन के उपाय सम्बन्धी सुझाव राष्ट्रपति को प्रस्तुत करने, तथा उनके कार्यान्वयन को अधिक प्रभावी बनाने के सुझाव देने के लिए उत्तरदायी हैं। इसके अतिरिक्त दोनों आयोग, अनुसूचित जातियों व अनुसूचित जनजातियों के संरक्षण,कल्याण, विकास व उनकी प्रगति सम्बन्धी अन्य उत्तरदायित्वों को पूरा करने के भी उत्तरदायी है; अनुसूचित जातियों व जनजातियों को प्रभावित करने वाले प्रमुख नीतिगत विषयों में संघ तथा राज्य सरकारों को उक्त दोनों कमीशनों से परामर्श करना अनिवार्य है।

4.7 बोध प्रश्न

प्रश्न:1- राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोगपरविस्तारपूर्वक लेख लिखें।

प्रश्न:2- महिला आयोग की बुनियादी प्रेरणा क्या है।

प्रश्न:3- अनुसूचित जाति एबं जनजाति आयोग पर टिप्पणी लिखें।

ज्ञान शांति मैत्री

4.8 उपयोगी एवं संदर्भ पुस्तकें

- आचार्य, नंदकिशोर. (2003). मानवधिकार के तकाजे. बीकानेर:वाग्देवी प्रकाशन.
- शर्मा, सुभाष. (2009). भारत में मानवधिकार. नई दिल्ली:नेशनल बुक ट्रस्ट.
- उपाध्याय, जय जय राम. (1999). मानव अधिकार. इलाहाबाद: सेंट्रल लॉ एजेंसी.
- मानवाधिकार शिक्षण प्रतिष्ठान (2009). मानवाधिकार : एक परिचय. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन.